पैंतरे

[फ़िल्मी दुनिया की एक हास्य-मयी झलक]

Paintrey

उपेन्द्र नाथ अश्क

Upendra Nath Ashk
Yes sir

Nibandh
Kum Kum

Nilab Prakashana Grek.

नीलाभ प्रकाशन गृह

प्रयाग

प्रकाशक
नीलाभ प्रकाशन गृह
५, खुसरो बाग़ रोड
इलाहाबाद ।

मूल्य ३)

मुद्रक—
हर प्रसाद वाजपेयी
कृष्ण-प्रेस, इलाहाबाद ।

श्री जगदीश चन्द्र माथुर के लिए

नौटंकी से पृथ्वी थीएटर्ज़ तक

[रंग मंच सम्बन्धी एक संस्मरण]

रंगमंच सम्बन्धी मेरे अनुभव गत तीस-पैंतीस वर्षों के घेरे में फैले हैं और चाहे उतने विशाल और विभिन्न नहीं तो भी खासे मनोरंजक हैं। जब मैं सोचने-समझने लायक हुआ तो देश का व्यावसायिक रंगमंच अन्तिम साँसें ले रहा था। 'मदन थीएटर्ज़' 'मदन फिल्म कम्पनी' में परिवर्तित हो गया था और एलफ्रेड और विक्टोरिया कम्पनियाँ, क्षण-क्षण बढ़ती और चढ़ती बढ़िया को देख आतंकित और आशंकित तट के दीपों सी, अपना आलोक बखेर रही थीं। सिनेमा का तूफान प्रबल वेग से बढ़ा आ रहा था। रंगमंच के उन टिमटिमाते दीपों को कब वह अपने साथ बहा ले जाय, इसका कोई ठिकाना न था। हाँ, एमेचर रंगमंच मेरी युवावस्था तक बना हुआ था और मेरी स्मृतियाँ अधिकतर इसी से वाबस्ता हैं।

......चौरस्ती अटारी जालंधर की धर्मशाला में एक अंधेरी रात, जिसे एक गैस का प्रकाश आलोकित किये हुए था। उस आलोक में धर्मशाला के आंगन में बिछा एक तख्त और उस पर बहुमूल्य चमचमाते वस्त्रों में आवृत्त अभिनेताओं की मूर्तियाँ......जाने कोई नौटंकी थी अथवा रासलीला कुछ भी याद नहीं। मैं तब बहुत छोटा था। केवल वह गैस का हंडा, वह तख्त, वे रंगीन वस्त्रों में वेष्टित अभिनेता और तख्त के इर्द-गिर्द बैठी भीड़ और पार्श्व-भूमि में चारपाइयों पर बैठे मेरे पिता और उनके मित्रों की धुंधली सी आकृतियाँ ही मुझे याद हैं। घर हमारा धर्मशाला के निकट ही था। मुझे न जाने किस काम से माँ ने पिता जी को बुलाने भेजा था। मैं बड़ी देर अपने आने का उद्देश्य भूले, वहीं खड़ा उन अभिनेताओं को देखता रहा था। वे क्या कह रहे थे, क्या गा रहे थे, मुझे कुछ स्मरण नहीं। इतना याद है कि अपना पार्ट समाप्त होने पर वे

तख़्त से उतर कर बायीं ओर धर्मशाला की एक कोठरी में चले जाते और वहाँ से नये कपड़े बदल आते थे...... ।

रंगमंच सम्बन्धी, यही पहला चित्र मेरी याद के पर्दे पर बना है। फिर बचपन ही के दिनों का एक और चित्र उभरता है।

'मुहल्ला मेहन्दुआँ' के चौक की एक रात—कोई नौटंकी होने जा रही थी। मैं कदाचित् चौथी-पाँचवीं में पढ़ता था, रात का खाना खाने के बाद, अपने बड़े भाई के साथ चौक पहुँचा था। हम ठीक स्थान पाने के लिए, समय से बहुत पहले, चौक के बीच में बिछे तख़्त के निकट जा बैठे थे। पर कदाचित् हम अपने शौक में घण्टों पहले जा पहुँचे थे। हम बैठे बैठे थक गये थे, पर नौटंकी आरम्भ न हुई थी। इस बीच में कई बार दर्शकों में (जिनमें अधिकांश नगर के बेकार बेफ़िक्रे और गुंडे थे) जगह के लिए लड़ाई हुई और जब साढ़े दस ग्यारह बजे जाकर अभिनेता रंगमंच पर आये और पहले बोल फ़िज़ा में गूंजे :

सुनो दोस्तो आज इक कहता हूँ मजमून
पहले पहल जब हिन्द में फैली थी ताऊन

और नगाड़ा किड़-तिर-किट कर बड़े विचित्र स्वर में बजा, तो हमने अपने आपको भीड़ में सबसे पीछे खड़े पाया।

हमारी विवशता, निराशा और खीझ की कल्पना की जा सकती है। न हमें अभिनेताओं की शक्लें ठीक से दिखाई दे रही थीं, न बोल सुनाई दे रहे थे (लाउड स्पीकर नाम की चीज़ को जालन्धर तक पहुँचने के लिए अभी एक युग दरकार था) आँखें नींद से बोझल थीं, कनपटियाँ दुख रही थीं, और दादा की मारपीट का डर मन-मस्तिष्क को घेरे था। एक दो बोल सुनने के बाद हम चले आये।

चले तो आये, पर एक बोल के समाप्त होने पर जो नगाड़ा बजता था वह मुझे इतना अच्छा लगता था कि जी होता—केवल उसे सुनने के

लिए रुके रहें। पर हम बहुत पीछे खड़े थे और नगाड़े के अतिरिक्त हमें कुछ भी दिखाई अथवा सुनाई न देता था और भाई साहब को नगाड़े में कोई दिलचस्पी न थी।

उस नगाड़े को निकट से बजते देखने और सुनने की साध शैशव से निरन्तर मेरे मन में बनी रही। हमारे बाजार में एक बढ़ई था—जमुना। वह जालन्धर में नौटंकी का बादशाह था। 'पूरन भगत', 'रूप वसन्त' 'श्रीमती मंजरी' और दूसरी कई नौटंकियों में भाग लिया करता था। कभी जब मौज में होता तो दो बोल भी सुनाता। आज मैं सोचता हूँ कि रंग-मंच सम्बन्धी मेरे औत्सुक्य को बढ़ाने में जमुना का बड़ा हाथ है। इसमें सन्देह नहीं कि पूरी नौटंकी मैं कभी न देख सका। उसका बहुत रात को आरम्भ होना ही मेरे रास्ते की बड़ी बाधा रहा, पर मैंने जमुना से उसके बोल सुन कर और एक-आध बार आध-एक घंटा नौटंकी देख कर ही उसे जान लिया। मैंने कभी नौटंकी नहीं लिखी, किन्तु जन-नाटक का जो भी रूप होगा वह नौटंकी के अधिक निकट होगा, इसका मुझे पूरा विश्वास है, फिर चाहे वह इपटा (IPTA) के बैले* का रूप धरे अथवा कोई नया आकार अपनाये।

उन्हीं दिनों मैंने रासलीला भी देखी। जालन्धर में जन्माष्टमी के अवसर पर वृन्दावन की रासमंडलियाँ आती थीं और एक दो मन्दिरों में रासलीलाएँ होती थीं। हमारे दादा नौटंकी-नाटक आदि देखने के बड़े विरोधी थे, पर उनकी धर्म परायणता ने हमें रासलीला देखने की आज्ञा दे दी, इस शर्त पर कि हम जल्दी घर आ जायँ। एक रास की स्मृति मेरे मन में आज भी बनी है जिसमें एक तीखे नक्श वाला लड़का मालिन का बहुरूप भरता था और गाता था—

मालिन आयी बीकानेर से अजमेर से
तरकारी ले लो

*Ballet = रहस

सुआ बेचूं पालक बेचूं औ' बेचूं चौलाई
बीच बाज़ार के डंडी मारूँ तो मालिन की जाई
रे तरकारी ले लो

'डंडी मारूँ' गाते हुए वह कुछ इस तरह आँख मारता था कि दिल को कुछ होने सा लगता। रसिक लोग 'आय हाय' कर उठते और बार बार यह गाना सुनने का अनुरोध करते। मैं कई दिन तक घर आकर उसकी नकल करता रहा और उठते बैठते मालिन का पार्ट घर वालों को सुनाता रहा।

उसी मंडली में एक कमसिन लड़का था जो कृष्ण का पार्ट करता था और बड़ा ही सुन्दर लगता था—तीखे नक्श, साँवला सलोना मुख और मनमोहक स्वर—गाते गाते वह अपनी जगह से उठता और दो एक तिरछे पग लेकर आधा दायरा बनाता हुआ नाच उठता। मुझे उसका वह नृत्य बड़ा अच्छा लगता था। मुझे अच्छी तरह याद है, उसके बाद मैं महीनों घर में उसी तरह नाचता रहा। आज भी वह नृत्य का टुकड़ा (इस बात के बावजूद कि मुझे नाच की ज़रा भी समझ नहीं) मुझे उसी तरह याद है।

रासलीला और नौटंकी वास्तव में खुले रंगमंच (Open Air Theatre) ही का रूप हैं। बीच मैदान में तख्त रख दिया जाता है और बड़े मज़े से नौटंकी चलती है। नगाड़े वाला तख्त के नीचे या ऊपर बैठ जाता है और पात्र अपने बोल बोल कर चले जाते हैं। प्रकृत दृश्य प्रस्तुत करने की वहाँ आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि दर्शकों की सूझ बड़ी सुगमता से महलों से लेकर रण-क्षेत्र तक की कल्पना कर लेती है और उस खुरें तख्त पर नहीं, बल्कि उनके ठीक सेटिंग में उनको रख कर उनके बोल सुनती है। प्रकृत-सेटिंग (Natural Settings)

नागरिक रंगमंचों के लिए हैं। गाँव के रंगमंच पर उनकी कोई आवश्यकता नहीं। दर्शक उनकी कल्पना कर सकते हैं। हाँ, नौटंकी की भाँति खेले जाने वाले नाटकों का काव्य अथवा संगीत-मय होना नितान्त आवश्यक है क्योंकि लम्बे लम्बे वाद-विवाद अथवा भाषण देहातियों को ऊबा दे सकते हैं। और नगाड़ा, वह तो नौटंकी की जान है। जैसा कि मैंने कहा, शैशव में मुझे नौटंकी के बोलों के बदले उस नगाड़े की आवाज़ ही अच्छी-लगती थी। उससे पहले जब नगाड़े की कल्पना मैं करता तो मेरे कानों में इमाम नासुरुद्दीन की बड़ी मस्जिद के भीमकाय नगाड़ों की धमाधम का वह स्वर गूंज जाता था जो रमज़ान के महीने में, सूरज डूबते ही, रोज़ा खोलने के समय की सूचना देता, दशों दिशाओं को गुंजा दिया करता। एक ही तरह की धमाधम का ऊबा देने वाला कर्णकटु स्वर! पर नौटंकी का नगाड़ा, उसकी अजीब सी किड़-तिर-किट और धमा धम तो अनायास हृदय के तारों को झंकृत कर देती और मन उस समय की प्रतीक्षा करता जब बोल समाप्त हों और नगाड़ा बज उठे।

जहां तक नागरिक (ऐमेचर) रंग-मंच का सम्बन्ध है, पहले-पहल मुझे उसका अनुभव १९२४ में हुआ। मैं उस समय आठवीं कक्षा में पढ़ता था। कई महीने से बीमार था, डाक्टरों ने जलवायु बदलने का परामर्श दिया था। पढ़ना-लिखना छुड़ा कर मेरे पिता मुझे पंजाब के एक गुमनाम से कस्बे 'दसुआ' में ले गये थे। जहाँ वे स्टेशन मास्टर थे। पिता जी रँगीले आदमी थे, स्वर भी उन्होंने बड़ा अच्छा पाया था। यद्यपि दूरस्थ स्टेशनों पर रहने के कारण वे कभी कला सम्बन्धी आयोजनों में किसी प्रकार का योग न दे सकते थे, पर यदि कहीं उन्हीं के स्टेशन के निकट कस्बे अथवा गांव में कोई ऐसा आयोजन होता तो उसमें वे अवश्य योग देते। उनकी मैत्री वहां के एक कलाल परिवार से थी। जिसमें दो एक बिगड़े अभिनेता भी थे। पिता जी के प्रोत्साहन और आर्थिक

सहायता से उन्होंने होली अथवा वसन्त के दिन (ठीक ठीक मुझे याद नहीं) 'बिल्व मंगल उर्फ़ सूरदास' खेलने का आयोजन किया। कला में मेरी रुचि से पिता जी भिज्ञ थे (मैं उन दिनों पंजाबी में कविता भी करता था) इसलिए उन्होंने मुझे साथ चलने का आदेश दिया।

मेरी प्रसन्नता का वार-पार न रहा। तबीयत मेरी कुछ वैसी ठीक न थी। सिर में हल्का सा दर्द भी था। पर नाटक देखने के चाव में मैंने उसका जिक्र तक न किया और पिता जी के साथ दो मील पैदल चल कर स्टेशन से कस्बे जा पहुँचा। नाटक उसी कलाल परिवार की बड़ी हवेली के अन्दर हो रहा था। बड़े खुले आंगन में दरी बिछी थी, जिसके पीछे प्रतिष्ठित लोगों के लिए कुर्सियाँ लगी थीं। (थीएटर हालों में प्रतिष्ठित लोग आगे बैठते हैं। पर वहां यदि वे आगे बैठते तो दरी वाले कैसे देखपाते ?) सामने एक बड़े चौड़े बरामदे में पर्दे लगाकर स्टेज बनाया गया था। पर्दे साधारण थे पर उस समय मुझे वे बड़े ही सुन्दर लगे। उसके बाद एलफ्रेड और विक्टोरिया कम्पनियों के शानदार पर्दे भी देखे और पृथ्वी थीएटर्ज़ की भव्य सैटिंग भी, पर जो पुलक उस पहले नाटक के कदाचित् मांगे-तांगे के पुराने-धुराने पर्दों को देख कर दुसूआ की उस शाम हुआ, वह फिर कभी नहीं हुआ।

हम लोग काफी पीछे बैठे थे। गैस की रोशनी से आंख पर ज़ोर पड़ता था अथवा योंही मेरी तबीयत खराब थी, इतना याद है कि जब खेल आरम्भ हुआ तो मेरी बायीं कनपटी के ऊपर पीड़ा का भार कुछ अधिक बढ़ गया। और ज्यों ज्यों खेल बढ़ता गया, पीड़ा भी तीव्रतर होती गई। पर इस डर से कि मेरे सिर-दर्द की बात सुनकर पिता जी पानी अथवा कांटे वाले के साथ मुझे घर न भेज दें, मैं अन्त तक दांत पीसे, दम साधे, कनपटी दबाये बैठा नाटक देखता रहा।

साढ़े नौ बजे के लगभग खेल आरम्भ हुआ और दो-अढ़ाई बजे तक होता रहा। मुझे उसके दृश्य आज भी ऐसे याद हैं, जैसे मैंने उसे

कल देखा हो, नाटक के कॉमक (Comic) में निर्लोभ राम का पार्ट तो मुझे अत्यधिक रुचा। उसका पहले 'राम राम' कहते घूमना और फिर 'माया' नामवाली रूपवती नारी को देख कर उसी का नाम रटना और अन्त में निराश होने पर कहना—

दुविधा में दोनों गये माया मिली न राम।
ठन ठन गोपाल रह गये बचा निर्लोभ राम॥

मेरे मानसपट पर ऐसा अंकित हुआ कि जब जालन्धर में सेवा समिति की ओर से 'विल्व-मंगल' खेला गया तो गैरिक वस्त्र धारण किये, सिर पर गेरुआ कनटोप लगाये, मैं ही निर्लोभ राम बना। मेरा बहुरूप और अभिनय इतना सफल रहा कि नाटक के अन्त पर पिता जी ने, जो सौभाग्य से वहीं थे और नाटक देखने चले आये थे, मुझ से पूछा कि मैं कौन सा पार्ट कर रहा था? और जब मैंने कहा कि निर्लोभ राम का! तो उन्हें विश्वास न आया कि उनका यह चुप्पू बेटा जिसके मुंह में उनके सामने ताला लग जाता था और जो उनके सामने बात करना तो दूर, आँख भी न उठाता था, लोगों को इतना हँसाता रहा है।

जालन्धर में उस समय सेवा समिति और महावीर दल में बड़ी स्पर्धा थी। न केवल यह कि यदि एक संस्था कोई नाटक करती तो दूसरी भी अवश्य करती, बल्कि दोनों इस बात की भी चेष्टा करतीं कि जैसे भी सम्भव हो, दूसरी का नाटक असफल कर दिया जाय।

सेवा समिति के 'विल्व मंगल' में भी महावीर दल ने गड़बड़ डालने का प्रयास किया था, पर समिति के प्रधान तब जालन्धर के एक प्रसिद्ध डाक्टर थे। दाख़िला पासों से हुआ था, इसलिए नाटक निर्विघ्न समाप्त हो गया। पर समिति के कुछ सदस्यों के हृदय में दल की उस कुचेष्टा की कसक अवश्य बनी रही और जब कुछ महीनों बाद महावीर दल ने सनातन-

धर्म-सभा में अपना नाटक 'अभिमन्यु वध' किया तो उन्होंने नाटक-स्थल के पड़ोस में रहने वाले कपूर्थला के टिक्का साहब को भड़का दिया, और उन्होंने डिप्टी कमिश्नर से मिलकर 'निषेध-पत्र' ले लिया कि वहां नाटक होने से आधी रात तक शोर होता है, और उनकी नींद खराब होती है।

यदि टिक्का साहब की नींद में खलल न आता तो नाटक तीन दिन अवश्य होता, पर तब वह केवल एक ही दिन हुआ। मैं तब महावीर दल का स्वयं-सेवक बन गया था। (वास्तव में अवसर के अनुसार मैं कभी महावीर दल और कभी सेवा-समिति का सदस्य बन जाता था।) उस नाटक का और तो कुछ मुझे अब स्मरण नहीं रहा। पर अभिमन्यु और उत्तरा के अभिनय की स्मृति आज तक बनी हुई है। पहला अभिनय जितना प्रभाव शाली हुआ, दूसरा उतना ही हास्यास्पद। अभिमन्यु की भूमिका में लाल बाजार का एक युवक बज़ाज़ 'निक्का' काम करता था। नौटंकी का नगाड़ा बजाने में वह दूर निकट अपना सानी न रखता था, बांसुरी ऐसी बजाता कि मन अनायास खिचा चला जाता। उसने अभिमन्यु का अभिनय इतना सुन्दर किया कि आज तक मुझे याद है। समिति वाले भी शोर मचाना भूल गये। रही उत्तरा, तो उसकी भूमिका में जो लड़का काम करने जा रहा था, वह ऐन मौके पर लापता हो गया। या तो वह किसी बात से रूठ गया (लड़कियों का पार्ट करने वाले लड़कों की अदाओं का क्या कहना) या बीमार हो गया। ठीक बात मुझे याद नहीं, इतना स्मरण है कि नाटक आरम्भ होने के कुछ ही क्षण पहले इलावलपुर का एक अभिनेता आगे लाया गया। जिसके सम्बन्ध में पता चला कि इलावलपुर नाटक समिति का बड़ा प्रतिष्ठित सदस्य है। और तीन-चार बार उत्तरा की भूमिका में उतर चुका है। वह इलावलपुर में न जाने धोबी था या दर्जी, साइकिल पर ही वह ग्यारह मील तय कर नाटक देखने आया था। दाढ़ी उसकी कुछ बढ़ी हुई थी, पर हजामत बनाने का समय न था। उसने विश्वास भी दिलाया कि ऐसा

मेकअप करेगा कि दाढ़ी का पता तक न चलेगा। किन्तु पहली बार ही जब वह स्टेज पर आया तो दर्शकों ने (जिनमें सेवा-समिति के सदस्य टिकेट लेकर' आये हुए थे) गगन-भेदी ठहाके से उसका स्वागत किया। अचकचा कर उसने झट घूंघट बढ़ा लिया, जिस पर फिर एक ठहाका पड़ा। उस 'कुशल' अभिनेता को यह अदा भूलाये नहीं भूलती। फिर अभिमन्यु-बध की सूचना जब रणिवास में पहुँची और सुभद्रा विलाप करने लगी तो उत्तरा भी घूंघट काढ़े स्टेज पर आ खड़ी हुई। बड़ी देर तक वह मौन, सिर झुकाये, घूंघट काढ़े खड़ी रही। फिर उसे विचार आया कि उसे भी कुछ न कुछ शोक-प्रदर्शन करना चाहिए। तब उसने बड़े ही भद्दे ढंग से झुके झुके मुड़कर सिर को घूंघट समेत एक ओर झटक दिया और कई क्षण उसी मुद्रा में खड़ी रही। फिर उसी भद्दे ढंग से दूसरी ओर झटक दिया और दृश्यान्त तक उसी मुद्रा में खड़ी रही। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इलावलपुर के उस महान अभिनेता के इस अद्वितीय अभिनय की दाद दर्शकों ने, उस शोक के क्षण में भी, दो बार हँस कर दी।

एक तो उत्तरा की भूमिका में काम करने वाले अपने अभिनेता के न आने का गम, दूसरे इलावलपुर के उस महान अभिनेता की लम्पटता का क्षोभ (जिसने मेकअप करने से पहले पारिश्रमिक के रूप में पांच रुपये हथिया लिये थे।) तीसरे सेवा समिति के सदस्यों द्वारा नाटक को बन्द करा देने का क्रोध—महावीर दल एक वर्ष तक इस कसक को पालता रहा। अन्त को जब सेवा समिति ने बड़ी तैयारी के बाद रेलवे के प्रसिद्ध मंडुवे में 'कृष्ण जन्म' नाटक खेला तो महावीर दल ने अपना बदला चुकाया।

मुझे "कृष्ण जन्म" की असफलता का बड़ा दुख हुआ। जाने कौन सी व्यावसायिक कम्पनी टूटी थी कि उसका एक कुशल अभिनेता जालन्धर आया। सेवा समिति ने उसे अपने अभिनेताओं को ट्रेन करने के लिए रख लिया। उसके आगमन की चर्चा सुनकर मैं फिर सेवा समिति का सदस्य बन गया। कदाचित परीक्षाओं के दिन थे, प्रतिदिन रिहर्सलों में जाना और खेल में भाग लेना तो कठिन था, पर मैंने यह सोच लिया कि कोई छोटी-मोटी सेवा अपने ऊपर लेकर नाटक अवश्य देखूंगा। सेवा समिति के (महावीर दल के भी) अधिकांश सदस्य दुकानदार थे। अपनी दुकानें बढ़ाकर और खाना आदि खाकर वे रिहर्सलों में आते और बारह बारह बजे रात तक रिहर्सलें चलतीं। मैंने दो एक रिहर्सलें देखी थीं और वह नया अभिनेता जिस प्रकार नाटक का निर्देशन कर रहा था, उसे देख कर नाटक को देखने की उत्सुकता और भी प्रबल हो गयी थी।

मैंने उस नाटक में अपने जिम्मे क्या सेवा ली, यह तो मुझे याद नहीं, किन्तु जब नाटक आरम्भ हुआ तो मैं हाल के अन्दर था, इतना मुझे याद है। उस नाटक का इतना प्रचार हुआ था और उस मंडुए में किसी अच्छे नाटक को हुए इतने दिन हो गये थे कि उस दिन मंडुवा दर्शकों से खचाखच भर गया। मैंने उसी मंडुवे में न्यु अलफ्रेड अथवा विक्टोरिया, किसी व्यावसायिक कम्पनी का खेल भी देखा था और मुझे याद है कि "कृष्ण जन्म" के दिन उससे कहीं अधिक भीड़ थी।

समिति के पास पर्दे काफी थे, किन्तु उस नाटक के लिए कुछेक नये भी बनवाये गये थे। नियत समय से थोड़ी ही देर बाद नाटक आरम्भ हो गया और बड़ी अच्छी गति से बढ़ने लगा। पात्रों का अभिनय, निर्देशन, साज सामान सब बहुत अच्छा था। पहले दृश्य पर जब पर्दा गिरा तो मैं मन्त्र-मुग्ध रह गया। उस दृश्य की छोटी से छोटी डिटेल (Detail) आज भी मुझे याद है—जब कंस को पता चला कि उसकी बहन के यहां आठवें बच्चे ने जन्म लिया है तो हिंसा और क्रोध

से भरा वह जेलखाने में आया और उसने देवकी के साथ चिमटी लड़की को उठा लिया और जब उसे पता चला कि आठवाँ बच्चा लड़का नहीं, लड़की है तो एक वीभत्स ठहाका मारते हुए उसने उस बच्ची को पत्थर पर दे पटका। तभी स्टेज पर गहरा मटियाला सा लाल अँधेरा छा गया, जिसमें कंस की सूरत और भी डरावनी हो गयी, पर ज्यों ही कंस ने लड़की को पत्थर पर पटका कि वह गायब हो गयी और एक विद्युत-शिखा सी जैसे रंग-मंच के सीने को चीरती हुई ऊपर को विलीन हो गयी। और आकाश वाणी हुई......लेकिन क्या आकाश वाणी हुई, यह किसी ने नहीं सुना। हाल में एकदम भारी कोलाहल उठ खड़ा हुआ और मारपीट होने लगी......मंच पर देवकी सर झुकाये बैठी थी। वसुदेव चकित खड़े थे। कंस बड़ी भयावनी मुद्रा में पीछे को दोनों हाथ उठाये टेढ़ा मुड़ा उस विद्युत-शिखा को जाते देख रहा था—निर्देशक ने, जो स्वयं कंस की भूमिका में काम कर रहा था बड़ी ही कुशलता से मंच पर यह दृश्य सेट किया था—एकदम प्रभावशाली और चमत्कार-पूर्ण...... किन्तु आकाश वाणी क्या हुई ? यह किसी ने नहीं सुना। पर्दा एक बार गिरा, फिर उठा और क्षण भर के लिए उसी दृश्य को दर्शकों के सामने प्रस्तुत कर फिर गिर गया।

किन्तु इस बीच में मारपीट अगली कुर्सियों तक आ गयी। हाल में सब के सब खड़े हो गये। यह कोलाहल और मारपीट घण्टों चलती रही। दूसरे अंक का पर्दा उठा। किन्तु अभिनेता ने क्या कहा किसी ने नहीं सुना। पर्दा फिर गिर गया और फिर जो गिरा तो फिर नहीं उठा। दूसरे दिन पता चला कि महावीर दल को अपने उस पुण्य का ʻ में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई थी और उस पुण्य के फल स्वरूप दोनों ओर से दो एक सदस्यों के सिर फट गये थे और आठ-दस दर्शक अस्पताल जा पहुँचे थे।

इसके बाद मैंने स्वयं भी दो तीन नाटकों में पार्ट किया। एमेचर रंग-मंच, पर लड़कियों की भूमिका में लड़कों के उतरने से कैसी मनोरंजक और हास्यापद घटनाएँ हो जाती थीं और पंजाब में पहले-पहल कब मिश्रित कास्ट (Mixed Cast) आरम्भ हुई और लड़कियों का पार्ट सचमुच लड़कियों ने ही किया, इस सिलसिले में भी मुझे बड़े दिलचस्प अनुभव प्राप्त हुए। कुछ का उल्लेख मैंने अपने उपन्यास "गिरती दीवारें" में किया भी है ❀। उन्हें यहाँ न दोहरा कर एक मनोरंजक घटना या दुर्घटना का यहाँ उल्लेख करता हूँ।

मैं आठवीं या नवीं में पढ़ता था और भाई साहब कालेज जाने लगे थे, जब उन्होंने बताया कि कालेज के वार्षिकोत्सव पर "महाभारत" नाटक होगा। कालेज हमारे घर से बड़ी दूर, नगर से बाहर, लगभग तीन साढ़े-तीन मील था और साइकिल घर में थी नहीं। हमारे दादा उतनी दूर जाने की आज्ञा न देते थे। मुझे नाटक का इतना शौक था कि मैंने झूठ बोल कर उनसे आज्ञा लेली। नाटक के एक दिन पहले मैंने उनसे कहा कि नाटक देखने के लिए जाना आवश्यक है, कालेज का वार्षिकोत्सव है, हमारा स्कूल भी क्योंकि उसी संस्था के अधीन है। यदि हम न जायंगे तो जुर्माना हो जायगा।

दादा गर्जे, "कैसे जुर्माना हो जायगा, करें जुर्माना। मैं जाकर उन से पूछूंगा कि छोटे छोटे बच्चे कैसे इतनी रात में इतनी दूर जा सकते हैं।"

हम घबराये कि कहीं सचमुच ही दादा जी स्कूल न चले जायं, पैंतरा बदल कर मैंने कहा, आपके डर से जुर्माना न करेंगे तो मन में खार लाये बैठे रहेंगे और परीक्षा में फेल कर देंगे, यों मास्टर ने साइकिल वाले लड़कों की ड्यूटी लगा दी है कि जिनके पास साइकिल नहीं उन्हें

❀गिरती दीवारें—६६ वें से ७१ वें परिच्छेद तक!

अपने साइकिलों पर लायें। मैं भाई साहब के एक मित्र के साथ चला जाऊँगा। वही मुझे छोड़ भी जायेंगे।

दादा ने भाई साहब से पूछा। मेरी और भाई साहब की मिली-भगत थी। उन्होंने मेरी बात का समर्थन किया और दादा ने अनिच्छापूर्वक आज्ञा दे दी।

गये तो हम पैदल ही। पर भाई साहब ने कहा था कि आते समय बहुत से लड़के साइकिलों पर आते हैं, किसी न किसी की साइकिल पर शहर तक आ जायंगे। साढ़े-आठ नौ बजे नाटक आरम्भ हुआ। कालेज के बाहर तख्त जमाकर और भंगियों के एक क्लब से पर्दे उधार लेकर मंच तैयार किया गया था, लड़के बाहर खुर्री धरती पर बैठे थे, पीछे कुछ बेंचें और कुर्सियां लगा दी गयी थीं। मैं और भाई साहब काफी आगे बैठे थे। नाटक का कॉमक भाग बहुत अच्छा था। एक नकल मुझे अभी तक याद है—

[कक्षा लगी है। लड़के शोर मचा रहे हैं कि अध्यापक आ जाता है। लड़कों को शोर मचाते देख कर तिलमिलाता है और कुर्सी पर बैठते ही उन्हें डांटता है कि वे कुछ पढ़ते नहीं और उन्हें कुछ नहीं आता कि वह अभी उनकी परीक्षा लेगा और पूछता है :]

अध्यापक : बताओ! जी. आई. आर. एल गिरल (Girl) गिरल के माने ?

[सभी लड़के हाथ उठाते हैं। कुछ दोनों हाथ उठाते हैं। टीचर जल्दी में, जिसका हाथ सब से बढ़ा है उससे पूछता है।]

अध्यापक : तुम बताओ!

लड़का : जी, जी, गिरल... गिरल माने लिरकी!

रहा मुख्य नाटक तो वह भी एक तरह से कामक ही हो गया।

पार्ट सब अभिनेताओं ने याद कर रखे थे। और बड़ा अच्छा हो भी रहा था कि 'द्रौपदी चीर हरण' का दृश्य आया। निर्देशक ने उसकी भव्यता को प्रकट करने का बड़ा अच्छा प्रबन्ध किया था। रंगमंच क्योंकि एक क्लास रूम की दीवार के साथ बना था, इसलिए निर्देशक ने पिछली दीवार की दोनों खिड़कियों और बीच के दरवाजे का प्रयोग सफलता से उस दृश्य में किया था। आठ दस साड़ियाँ मिला कर पिछली दीवार की दोनों खिड़कियों से उनको दायरे में चलाया जा रहा था, द्रौपदी बीच में थी। सामने दरवाजे के अन्दर कृष्ण जी खड़े अनवरत साड़ी बढ़ाते दिखाई देते थे और खिड़कियों से आते हुए साड़ी उनके पास से होकर गुजरती थी, लगता था कि लगातार साड़ी भेजे चले जा रहे हैं।

निर्देश यह था कि द्रौपदी उस खिड़की से आने वाली साड़ी के साथ लगी लगी घूमती जाय। और दुःशासन उसी को खींचता जाय। पर इसे दुर्भाग्य कहिए या कुछ और कि द्रौपदी ने अपनी साड़ी कुछ ऐसे बेढंगे पन से पहन रखी थी कि उसका पल्ला उस चक्कर खाती साड़ी में उलझ गया और दुःशासन के हाथ में पड़ गया और अनजाने में खिंचता गया। द्रौपदी अपने ध्यान में घूमती गई कि एकदम सब खिलखिला कर हँस पड़े। द्रौपदी की भूमिका में काम करने वाला लड़का सहसा रुक गया। सबने देखा कि द्रौपदी ने साड़ी के नीचे हाफ़ पैंट पहन रखी है— खाकी जीन की हाफ़ पैंट – और द्रौपदी की टांगे हैं, जिन पर रीछ से घने बाल हैं। लड़के हँसी से दोहरे हुए जा रहे थे। तभी सहसा निर्देशक ने, जो अर्जुन का पार्ट भी कर रहा था, उठकर पर्दा गिरा दिया।

रेडियो की नौकरी के दिनों में मैंने अच्छे अच्छे नेताओं और अफसरों को माइक-कान्शस (Mike Conscious)* होते देखा। किसी को

*माइक के सामने जिसे घबराहट हो।

अनायास प्यास लग उठती, किसी को ऐन वक्त पर लघुशंका हो आती। खांसी तो सभी को बार बार आती। मैं स्वयं आरम्भ में माइक-कान्शस रहा हूँ और कुछ मित्रों की माइक कान्शसनेस के इतने किस्से मुझे याद है कि स्मृति मात्र से हँसी आती है। फिल्म की नौकरी और फिल्म के अभिनय में मैंने कैमरा कान्शेसनेस को भी देखा। एक-आध लाइन बोलनी होती, रिहर्सल में अभिनेता बिल्कुल ठीक पार्ट लेता, पर ज्योंही डाइरेक्टर कहता—टेक! (Take) कि कोई न कोई गलती हो जाती! स्टेज कान्शेसनेस इन दोनों से बढ़कर है। कारण यह कि रेडियो के श्रोता और फिल्म के दर्शक सामने नहीं होते और रंग मंच के दर्शक जरा सी गलती पर ठहाका लगाने को सामने उपस्थित होते हैं। अपने नाटक 'पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ' में मैंने रिहर्सलों में बड़ी डींग मारने वाले अभिनेताओं को रंगमंच पर आते ही बेतरह घबराते और कुछ का कुछ बोल कर नाटक का बंटाढार करते दिखाया है। और वह नाटक सच्ची घटना पर अवलम्बित है। वैसे ही एक और घटना मुझे याद है। एक बार जब निर्देशक रिहर्सल करा रहे थे तो एक अभिनेता साधारण ढंग से सम्वाद बोला— 'एक नदी पार की, दूसरी नदी पार की, आकाश देखा मेघाच्छन्न'!

निर्देशक बिगड़े। मुंह बिचका कर उस अभिनेता की नकल लगाते हुए उन्होंने कहा—एक नदी पार की, दूसरी नदी पार की, आकाश देखा मेघाच्छन्न—यह क्या है? मियाँ एक्ट कर रहे हो या घास छील रहे हो? दायें हाथ से नीचे हवा को चीरते हुए और एक पग बढ़ाते हुए कहो— 'एक नदी पार की' बायें हाथ से नीचे हवा को चीरते हुए और दूसरा पग बढ़ाते हुए कहो—'दूसरी नदी पार की।' और दोनों हाथ उठा कर आकाश की ओर देखते हुए कहो—'आकाश देखा, मेघाच्छन्न!'

और उन्होंने उसी तरह बड़ी सुन्दरता से यह वाक्य अभिनय के साथ बोल कर सुनाया। अभिनेता ने उसी प्रकार अभिनय करके दिखा दिया। किन्तु रंगमंच पर उतरते ही वह कुछ ऐसा बौखलाया कि निर्देश

Bansi Lal Sar.

बिल्कुल भूल गया। नीचे धरती की ओर देखने के बदले ऊपर की ओर मुंह करके हाथ से हवा को चीरते और एक पग बढ़ाते हुए उसने कहा—एक नदी पार की, दूसरा पग बढ़ाते और दूसरे हाथ से हवा को चीरते हुए कहा—दूसरी नदी पार की। और फिर धरती में आंखें गाड़, दोनों हाथ फैलाकर बोला—आकाश देखा, मेघाच्छन्न !

किसी ने कहा है Posterity is very selfish and cruel अर्थात् संतति (आने वाले पाठक) बड़े स्वार्थी और निर्मम हैं। पर रंग मंच के दर्शकों का स्वार्थ और निर्ममता उनसे कम नहीं। जरा सी भूल चूक भी वे क्षमा नहीं करते। बम्बई में 'इपटा' के एक नाटक की, घटना भुलाये नहीं भूलती। 'इपटा' 'काश्मीर डे' के सम्बन्ध में एक शो दे रहा था। 'सुन्दर बाई हाल' में नाटक का आयोजन था। बलराज साहनी निर्देशन कर रहे थे। नाटक भी उन्हीं का लिखा था। कला की दृष्टि से नाटक वैसा सफल न था पर बलराज के अभिनय और निर्देशन ने उसमें जान डाल दी थी। और नाटक दर्शकों को देश काल की सुध बुध भुलाये अपने साथ बहाये लिये जा रहा था। बलराज एक बुड्ढे मल्लाह का बड़ा ही सफल अभिनय कर रहे थे और कवि महजूर की भूमिका में एक और युवक था। उसकी ओज भरी वाणी नाविकों को कर्म के लिए प्रेरित कर रही थी। उस समय जब नाटक क्लाइमेक्स को पहुँच रहा था, और कवि महजूर (महजूर की भूमिका में काम करने वाले अभिनेता) को कहना था—'आज की यह सुलगती सी चिनगारी कल शोला बनेगी। और वह शोला एक धधकती हुई आग बनकर सारे के सारे काश्मीर पर छा जायगा, और शेरे-काश्मीर की क़यादत में दसियों नहीं बीसियों, बीसियों नहीं हज़ारों, हजारों नहीं लाखों, लाखों नहीं करोड़ों काश्मीरी अपनी आजादी के लिए सीना ताने बढ़ेंगे......कि वह बड़े जोश से बोलता हुआ, ज़बान चूक जाने से कह गया—दसियों नहीं बीसियों, बीसियों नहीं हजारों, हजारों नहीं

करोड़ों, करोड़ों नहीं लाखों......कि हाल का मौन एक छत्त-फाड़ ठहाके से भङ्ग हो गया। और फिर बलराज का एक्टिंग भी उसे न सम्हाल सका। महजूर की भूमिका में काम करने वाला युवक ऐसा शरमिंदा हुआ कि दूसरे दिन वह लाख कहने पर भी रंगमंच पर आने का साहस न कर सका।

बलराज का ज़िक्र चला तो बम्बई का एमेचर रंगमंच और उसकी सरगर्मियाँ, इपटा, उसके खेल और बेले (रहस) मेरे सामने घूम गये हैं। बम्बई में अपने दो वर्षों के निवास में मुझे इपटा को निकट से देखने, उसके लिए लिखने और एक नाटक के निर्देशन का भी अवसर मिला। यद्यपि एमेचर संस्थाओं की दो एक त्रुटियाँ 'इपटा' में भी देखीं जो निःशुल्क काम करने वालों के मनोविज्ञान को देखते हुए बड़ी साधारण और व्यापक हैं, समय-साधकों का भी अभाव उसके सदस्यों में नहीं रहा और वहाँ ऐसे लोग भी मिले जो बम्बई के फिल्मी जीवन में पांव जमाने के लिए इपटा को सीढ़ी समझते थे और उसका लाभ उठाते थे, तो भी एक बात निःसंकोच कही जा सकती है कि जितनी लग्न इपटा के कार्यकर्ताओं में मैंने देखी (विशेषकर उसके रहस-विभाग में) उतनी और किस संस्था के वरकज़ में देखने को नहीं मिली। इपटा के रहस विभाग में काम करने वाली लड़कियां तो ऊँचे घरों की, ऊँचे चरित्र की, इपटा को फिल्मी जीवन में जाने का साधन नहीं, प्रगतिशील विचारों के प्रसार का साधन मानकर आन्तरिक लग्न से उसमें काम करती थीं। और रूखी सूखी रोटी खाकर दिन रात अनथक परिश्रम में रत रहती थीं। कमरों की सफाई, खाना परोसना, रहसों के लिए पोशाकें बनाना, रंगना—सब काम स्वयं करती थीं और यदि मैं यह कहूँ कि बम्बई की इपटा के रहसों को देखकर इलाहाबाद में देखा उदयशंकर का नृत्य फीका लगा तो इसमें अत्युक्ति न होगी। बम्बई इपटा का नृत्य विभाग उस समय उदयशंकर के भाई श्री

रविशंकर और उन्हीं के ग्रुप के कुछ सदस्योंके निर्देशन में काम करता था। कला तो उदयशंकर ही की थी। सोद्देश्यता और लग्न इपटा की और फिर उदयशंकर कदाचित अधिक अभिनेताओं का खर्च सहन नहीं कर सकते, जबकि इपटा में छः सात तो लड़कियाँ ही काम करती थीं और दस पन्द्रह युवक नर्तक थे। वेतन पर काम करने वाले अभिनेता इतनी निष्ठा और लग्न से काम नहीं कर सकते। इपटा की रामलीला, इपटा का माहीगीरों का नाच, भारत का इतिहास रहस के माध्यम से सदा स्मृति पट पर अंकित रहेंगे। इपटा के रहसों को देखकर ही जाना जा सकता है कि नृत्य और गान से कैसे जनता को जगाया और शिक्षित बनाया जा सकता है।

बम्बई में इपटा के दो भाग थे। एक अंधेरी में श्री रविशंकर तथा शान्तिदा के निर्देशन में काम करता था। दूसरा सेंडहर्स्ट रोड पर श्रीबलराज साहनी के। यहाँ नाटक आदि होते थे। क्योंकि नाटक प्रायः इपटा में काम करने वाले ही लिखते थे और वे अभिनेता चाहे कितने भी अच्छे क्यों न हों, उतने अच्छे नाटककार न थे, इसलिए उन नाटकों का कला-पक्ष दुर्बल रहता था। पर बलराज अपने निर्देशन और अभिनय से उनमें जान डाल देते थे। बम्बई में तो नहीं, लेकिन दो वर्ष पहले इलाहाबाद में अ० भा० इपटा सम्मेलन में इपटा की बम्बई ब्रांच का एक नाटक देखा जिसकी याद सदा ताज़ा रहेगी—'जादू की कुर्सी'।

'जादू की कुर्सी' की खूबी यह थी कि चाहे वह भी इपटा के सदस्यों द्वारा ही लिखा गया था और प्रचारात्मक ही था, पर बार बार खेले जाने और बार बार संशोधित होनेसे धुल मंझकर वह, जहाँ तक नाटकीयता का प्रश्न है, बड़ा ही उच्चकोटि का हो गया था। दूसरा गुण उसका यह था कि वह प्रायः पांडुलिपि-विहीन नाटक था। उसकी कोई पाँडुलिपि इपटा के पास न थी। और यह सत्य है कि यदि वह कागज पर लिखा जाता तो वे

ठहाके तो दूर रहे, जो हाल में लोग उसे देख कर लगाते थे, मुस्कराहट तक भी किसी के ओठों पर न आती। 'जादू की कुर्सी' का कमाल उसके मसौदे में उतना नहीं, जितना नाटक की कला और बलराज साहनी के एक्टिंग में.........पर्दा उठने पर हम देखते हैं रंग-मंच पर रिहर्सल होने वाली है और अभिनेता एक हुड़दंग मचाये हुए हैं और निर्देशक परेशान है कि क्या करे, आखिर वह सब को चुप कराता है और एक एक्टर को पकड़ता है और उससे पूछता है कि उसे पार्ट याद है कि नहीं और जब वह दस नाटकों के नाम बताता है कि उसे सबके पार्ट याद हैं तो निर्देशक पूछता है कि उनके नहीं, जादू की कुर्सी के? तब अभिनेता, जो बलराज है, अपना पार्ट सुनाने लगता है। बीच में भूल जाता है और निर्देशक उसे टोकता है तो वह कहता है उसे भूख लगी है और उसने खाना नहीं खाया, इसलिए वह भूल रहा है और यहाँ से नाटक कुछ इस तरह मोड़ लेता और वर्तमान राजनीतिक तथा सामाजिक व्यवस्था पर कुछ इस प्रकार दायें बायें छींटे कसता चला जाता है कि उसका जवाब नहीं। मैंने देखा कि जिन लोगों पर वे भाव की पड़ रही थीं वे भी, कम से कम उस समय, हँस रहे थे। बाद को उन नश्तरों की चुभन उन्हें महसूस हुई और यू० पी० में नाटक के प्रदर्शन पर निषेध लगा दिया गया, यह दूसरी बात है।

नाटक पर निषेध की बात चली तो मुझे अपने नाटक 'तूफ़ान से पहले' की बात याद आ गयी। १९४६ में मैं अपने नाटक 'कैद' और 'उड़ान' तैयार कर रहा था कि बन्ने भाई (श्री सज्जाद ज़हीर) ने मुझसे कहा—अश्क इतना बड़ा हादिसा हो रहा है और तुम कुछ कहीं लिखते। मैंने कहा—मैं इस पर अवश्य लिखूंगा, पर कदाचित अभी नहीं, कुछ दिन बाद। उन्होंने कहा, नहीं तुम अभी लिखो—इपटा के लिए। मैंने उनसे कहा भी कि इपटा के लोग अपना लिखा नाटक खेलेंगे। मेरा श्रम बेकार जायगा, पर उन्होंने बड़ा ज़ोर दिया। तब मैंने हाथ के सब काम छोड़कर अपना नाटक 'तूफ़ान से पहले' लिखा। श्री अब्बास के घर

प्रगतिशील लेखक संघ की एक मीटिंग में वह सुनाया गया। उसका बड़ा प्रभाव सुनने वालों पर पड़ा, दो एक की तो आँखें भी सजल हो गयीं, अब्बास ने ही उसका नाम भी रक्खा—"तूफ़ान से पहले"।

कई हफ़्ते गुजर गये, पर जिस नाटक को लिखवाने के लिए उतना जोर दिया गया था, उसे खेलने के लिए किसी ने उत्सुकता प्रकट न की। मैंने बन्ने भाई से कहा। उन्हें भी दुख हुआ और उन्होंने बलराज से इसकी शिकायत की। बलराज ने इपटा की एक जनरल मीटिंग में मुझे बुलाया मुझसे नाटक सुनवाया और कहा कि इपटा से सदस्य तो उसके मुख्य नाटक में व्यस्त हैं, तुम नये अभिनेता चुन लो और उन्हीं की सहायता से स्वयं चाहो तो नाटक तैयार करा लो। मेरा स्वास्थ्य उन दिनों गिरना शुरू हो चुका था, मैं चाहता था कि बलराज स्वयं नाटक का निर्देशन करें, पर जब उन्होंने यों टाला तो मुझे बड़ा क्षोभ हुआ, किन्तु प्रकट शान्त भाव से मैंने कहा कि अच्छा मुझे अभिनेता दे दिये जायँ, मैं नाटक तैयार कर दूंगा, उन्होंने मीटिंग ही में अभिनेताओं के लिए अपील की, कई युवकों और युवतियों ने नाम लिखा दिये।

अधिकांश लोग गुजराती और मराठी थे, और उनमें से कोई पहले स्टेज पर न आया था। पर मैं जुट गया। प्रतिदिन मलाड से लगभग बीस मील दूर सेंडहर्स्ट रोड जाता और रिहर्सल लेता। इस प्रकार दो महीने के श्रम और नये अभिनेताओं की लग्न, सहयोग और सहृदयता से मैंने अभिनेताओं का उच्चारण ठीक कर, प्रतिदिन रिहर्सल लेकर नाटक की सूरत निकाल दी। अन्तिम रूप से उसका अभिनय होने से पहले एक दिन फिर सभी सदस्यों की मीटिंग हुई। नाटक खेला गया, तो बलराज ने कुछ बड़े अच्छे परामर्श मंच पर पात्रों की सेटिंग के सम्बन्ध में दिये। फिर कुछ ऐसा हुआ कि अपना मुख्य नाटक छोड़ अभिनेता उसी में भाग लेने को आतुर हो उठे और एक भी पुराना अभिनेता न रहा। मुझे इसका बड़ा दुख हुआ। मेरा मत था कि नाटक चाहे कुछ असफल या दुर्बल रह जाय, पर जिन अभिनेताओं ने उस पर दो महीने श्रम किया

है वे ही उसे पहली बार खेलें। पर मैं उन्हीं दिनों की अनियमितता से कहीं सर्दी खा गया और मुझे ज्वर आने लगा, जो यक्ष्मा ही पर जाकर रुका। नाटक इपटा की अंधेरी ब्रांच में हुआ। मैं तो नहीं देख सका, पर भाई शमशेर बहादुर से सुना कि बड़ा सफल हुआ। जिन अभिनेताओं ने उसकी सम्भावना इपटा के उदासीन सदस्यों पर स्पष्ट की थी, उनमें से एक भी उसमें न था। सुना था कि नये पुराने अभिनेताओं की सहायता से एक ही साथ कई इलाकों में वह नाटक दिखाया जायगा, पर बम्बई सरकार ने उस नाटक को जो, साम्प्रदायिक दंगों के विरुद्ध लिखा गया था, इसी बिना पर निषिद्ध करार दे दिया कि उससे साम्प्रदायिक कटुता बढ़ने का भय है। बम्बई सरकार के उस निर्णय पर आज भी हँसी आती है। पर सरकारों के कितने निर्णयों पर हँसी नहीं आती?

बम्बई की 'इपटा' का जिक्र आया तो अनायास बम्बई ही के पृथ्वी थीएटर्ज़ का भी ध्यान हो आता है। पृथ्वी थीएटर्ज़ एमेचर नहीं, वह व्यावसायिक है। मुझे व्यावसायिक रंगमञ्च का उतना अनुभव नहीं। आठवीं या नवीं श्रेणी में जब मुझे नाटक का नया नया शौक हुआ था, जालन्धर में रहमत की थीएट्रीकल कम्पनी आयी थी। नाम तो कदाचित उसका विक्टोरिया थीएट्रीकल कम्पनी था—ठीक मुझे स्मरण नहीं—पर क्योंकि उसके संचालक पंजाब के प्रसिद्ध एक्टर-डायरेक्टर मास्टर रहमत थे, इसलिए वह रहमत ही की कम्पनी कहलाती थी। रहमत का नाम उन दिनों पंजाब के बच्चे बच्चे की ज़बान पर था। उनके नाटकों की धुनें और ग़ज़लें आज की सफल फिल्मी धुनों की तरह हर एक की ज़बान पर थीं।

क्यों जा रहा है मेरी मट्टी को ख्वार करके?
पामाल ठोकरों से मेरा मजार करके?
पहले लगायीं आँखें ओ बेवफा सितमगर!
क्यों फेरलीं निगाहें, आँखों को चार करके?

रहमत के किसी नाटक की ग़ज़ल थी जो गली मुहल्ले में छोकरे गाते फिरते थे। मैंने उनके सब नाटक किराये पर लेकर पढ़ डाले थे और उन दिनों मैं उनका बड़ा प्रशंसक था, पर एक तो नाटक का कम से कम टिकट बारह आने था, दूसरे नाटक नौ साढ़े नौ बजे शुरू होकर रात के तीन चार बजे तक रहता था, इसलिए दादा जी की आज्ञा का मिलना असम्भव था। मैं निरन्तर आज्ञा लेने की कोशिश करता रहा, भाई साहब ने भी बड़ी कोशिश की। अन्त में जिस दिन हम अपने प्रयास में सफल हुए, कम्पनी का अन्तिम खेल होने वाला था— चूं चूं का मुरब्बा[1]! भाई साहब तो 'चूं चूं का मुरब्बा' देखने को कुछ वैसे उत्सुक—न थे पर मैं एक नाटक की अपेक्षा सभी नाटकों के 'मॉजून' का रसास्वादन कर लेना बुरा न समझता था। सो हम चूं चूं का मुरब्बा देखने गये। रेलवे रोड के मंडुए में खेल हो रहा था। बारह बारह आने के टिकट लेकर हम अन्दर जा पहुँचे। सबसे पिछले दर्जे में बैठे होने के कारण हमें उतना अच्छा सुनायी और दिखायी न देता था, पर 'पंजाब मेल' का एक सीन 'फाटक खुल जायगा'; कृष्ण जन्म में वसुदेव के नदी पार करने का दृश्य; रहमत के प्रसिद्ध नाटक 'दर्दे जिगर' में स्वयं रहमत का पार्ट; एक नृत्य और दो एक कॉमिक (comic) सीन मुझे बहुत अच्छे लगे।

आज कॉमिक का स्तर बहुत ऊँचा उठ गया है। फ़िल्म में चलें तो चलें, पर रङ्गमञ्च पर भोंडे कॉमिक नहीं चल सकते। किन्तु तब के कॉमिक 'गोरी तेरे गाल पै' की तरह के थे और किसी चुलबुली नौकरानी पर दो नौकरों का अथवा मालिक और नौकर दोनों का मरना, किसी डरपोक पति का क्रूर पत्नी के हाथों झाड़ू से पिटना; नौकरों की शेरबाज़ी आदि को लेकर सरकस के जोकरों का सा हास्य प्रस्तुत करते थे और नाटकों ही की भाँति यथार्थ से उनका कोई वास्ता न था। स्वगत-भाषण तो उनमें ऐसा खटकता था कि क्या कहा जाय। बहरहाल उस चूं चूं के

१. अन्तिम नाटक जिसमें सभी नाटकों का एक एक दृश्य रहता है।

मुरब्बे में उस समय के रङ्गमञ्च, उसकी सीन-सीनरी, गम्भीर नाटक और प्रहसन—सब का आनन्द मैंने एक ही दिन में पा लिया। अन्तिम दृश्य मुझे आज भी याद है। ज्यों ज्यों दृश्य खेले जाते थे, पीछे के पर्दे और साज़-सामान, दर्शकों के बिना जाने, हटाया जा रहा था। अन्तिम दृश्य में इधर के पहले पर्दे के बाहर दो अभिनेता कुछ नकल कर रहे थे। उनके नेपथ्य में जाते ही पर्दा उठ गया। देखा कि सामने स्टेज नितान्त सूनी है, न कोई पर्दा है, न नेपथ्य, न साज-सामान; ऊपर मंडुए की ढालुवी छत पर बांस आदि दिखायी दे रहे हैं। कम्पनी के सब अभिनेता, उन दो को छोड़कर जो कुछ क्षण पहले पार्ट कर रहे थे, अपने साधारण वस्त्रों में सामने खड़े हैं। तब उनमें से किसी ने बड़ी सोज़ भरी आवाज में गाया—

बुलबुल ने आशयाना चमन से उठा लिया।
उसकी तरफ़ से बूम बसे या हुमा रहे[1] *॥*

और दूसरे ने उससे भी दर्द भरी लय में गाया

दरो दीवार पै हसरत से नज़र करते हैं।
खुश रहो अहले-वतन हम तो सफ़र करते हैं॥

वह सूनी स्टेज, वह उस स्वर का दर्द, वह कम्पनी और उसके अभिनेताओं की लोकप्रियता—हृदय को कुछ होने सा लगा।

तभी सहसा पर्दा गिर गया।

पृथ्वी थीएटर्ज की दाग़ बेल तभी पड़ गयी थी जब मैं बम्बई में था। दादर में मैंने उनकी दो-एक रिहर्सलें और एक कंसर्ट भी देखी थी। उन दिनों पृथ्वी थीएटर्ज़ में मेरे दो मित्र मोहन और भाटिया काम करते थे। वे ही मुझे वहाँ ले गये थे और उन्हीं ने मुझे पहले-पहल

---

१. बुलबुल ने अपना नीड़ बाग से उठा लिया, अब उसकी ओर से वहाँ उल्लू बसे या हुमा रहे। हुमा एक प्रसिद्ध पक्षी है जिसके बारे में कहा जाता था कि जिसके सर पर से गुजर जाय वह बादशाह हो जाता है।

पृथ्वीराज से मिलाया भी था। न जाने क्यों पृथ्वीराज के प्रति मेरे मन में एक पूर्व-ग्रह सा बन गया था। मैंने फिल्म के पर्दे पर उन्हें कई बार देखा। 'विद्यापति' 'अभागिन' 'पागल' और 'इशारा' में उनका अभिनय बहुत अच्छा भी लगा, पर वह पूर्व ग्रह नहीं मिटा। अब सोचता हूँ तो पाता हूँ कि मुझे फिल्मी एक्टर पृथ्वीराज के अभिनय में कुछ अजीब सा Mannerism (अभिनय की कुछ एक सी अदाएँ) खटकी थीं। [यद्यपि अब अपने अनुभव से जानता हूँ कि यह उनकी अपेक्षा डायरेक्टरों का दोष था जो किसी अभिनेता के विभिन्न गुणों को नहीं समझ पाते और यदि कोई अभिनेता किसी एक रोल में एक बार सफल हो जाता है तो फिर उसे उस के अतिरिक्त कोई दूसरा रोल ही नहीं देते।] इसके अतिरिक्त बम्बई की कुछ सभाओं में पृथ्वीराज के भाषण सुने थे। बोलते बालते वे कहीं से कहीं भटक जाते थे। इसका भी अच्छा प्रभाव मेरे मन पर नहीं पड़ा। थोड़ा सा दिखावा भी मुझे उनमें लगा और फिर पहली बार स्टेज पर मैंने उन्हें पृथ्वी थीएटर्ज़ के पहले नाटक शकुन्तला में दुष्यन्त की भूमिका में देखा। मुझे न वह नाटक रुचा न उनका अभिनय। थीएटर हाल पुराना था। उसकी ठीक लोकेशन मुझे याद नहीं। कहीं खेतवाड़ी से आगे अथवा बोरी बन्दर की ओर को था और बम्बई के रीगल, इरौस और मीट्रो के बदले फव्वारा (दिल्ली) अथवा चौक (इलाहाबाद) के सिनेमाघरों की याद दिलाता था। शो यद्यपि सुबह का न था, पर रात का भी न था। तीन साढ़े तीन बजे शुरू हुआ। तपोवन का दृश्य पृथ्वीराज ने यथासम्भव प्रकृत बनाया, पर कनविंसिंग (काबिले क़बूल) न लगता था। नाटक मन्थर-गति से चल रहा था। पृथ्वीराज का मैनरिज़्म यहाँ भी था। कई बार वे इतने धीरे बात करते थे कि सुनायी न देती थी। लोग पहले ही अंक में ऊब उठे और जब पिछली बेंचों पर से किसी ने चिल्लाकर पृथ्वीराज से कुछ ऊँचे बोलने को कहा तो मुझे पृथ्वीराज के बदले उस दर्शक से सहानुभूति हुई।

[अब सोचता हूँ तो पाता हूँ कि शकुन्तला की सफलता उसके नाटकत्व में नहीं, उसके कवित्व में है। ऐसा सफल नाटक बनाने के लिए

जो वर्तमान जनता को रुचे, उसके कथानक में परिवर्तन जरूरी है तब कालीदास के कथानक को आधारशिला न बना कर, महाभारत के कथानक को आधारशिला बनाना होगा। कालीदास के नाटक का रूपान्तर रेडियो के लिए उपयुक्त हो सकता है और रहस में तो उसकी सुन्दरता, मधुरता और भव्यता बड़ी ही अच्छी तरह व्यक्त की जा सकती है, पर आज के नाटक में जैसा संघर्ष दरकार है, वह दूसरा मनोवैज्ञानिक आधार चाहता है।]

पृथ्वी थीएटर्ज़ का पहला नाटक शकुन्तला असफल रहा, पर पृथ्वी-राज उसकी असफलता से घबराये नहीं। दूसरे वर्ष उन्होंने दूसरा नाटक तैयार किया--'दीवार'। मैं तब भी बम्बई ही में था। मुझे याद है एक दिन मैं बालकेश्वर में श्री धर्म प्रकाश आनन्द (हिन्दी के एक सफल कहानीकार जो फनांस मिनिस्ट्री की फाइलों में उलझ गये) के घर बैठा था कि उनके बड़े भाई ने आकर 'दीवार' की प्रशंसा की और उस अपार भीड़ का उल्लेख किया जो 'दीवार' देखने आयी थी। 'दीवार' की कहानी, जैसी कि उन्होंने मुझे सुनायी, उस समय की राजनीतिक समस्या की ओर संकेत करती थी। मैंने अपनी पूर्व-ग्रह-युक्त-उपेक्षा के कारण मन में समझ लिया कि उसकी सफलता का कारण विभाजन के विरुद्ध जनता की इच्छा है, न कि पृथ्वीराज का एक्टिंग और निर्देशन। मन ही मन मैंने यह भी तय कर लिया कि कहानी खासी ऊबा देनेवाली होगी। मैंने 'दीवार' नहीं देखा। चाहता भी तो उसे देखना मेरे लिए कठिन था। मैं मलाड में रहता था। उन दिनों रात दिन हमारे स्टूडियो में शूटिंग चलती थी। पृथ्वीराज के पास कोई थीएटर हाल न था। वे अपने नाटक 'ओपेरा हाउस' में सुबह नौ बजे से करते थे। 'ओपेरा हाउस' मेरे घर से बीस बाइस मील दूर था, प्रातः बहुत जल्दी उठूं तो मैं खेल के समय पर पहुँच सकता था। मन में उतनी उत्कंठा नहीं थी। सो मैं 'दीवार' नहीं देख सका। फिर बीमार पड़ गया। बम्बई से उखड़ा और पंचगनी से होता हुआ इलाहाबाद आ जमा।

पृथ्वीराज इस बीच में प्रति वर्ष एक नाटक तैयार करते रहे। अपने दल को लेकर भारत के विभिन्न प्रान्तों के दौरे उन्होंने किये और उनकी सफलता की भनक निरन्तर मेरे कानों में पड़ती रही। पहले मैंने बलराज साहनी का एक लेख पढ़ा। उन्होंने 'दीवार' और पठान की प्रशसा की। फिर मुल्कराज आनन्द का एक लेख पढ़ा। 'दीवार' और 'पठान' की तारीफ उसमें भी थी। बलराज और मुल्कराज की मैं इज्जत करता हूँ। किसी एकदम बोगस चीज़ की वे प्रशंसा करेंगे, इसमें मुझे सन्देह है, इसलिए मन का वह पूर्व-ग्रह कुछ मिट सा गया और सोचा कि यदि अवसर मिले तो पृथ्वी थीएटर्ज़ के ये खेल अवश्य देखे जायें। तभी गत दिसम्बर में सुना कि पृथ्वीराज दलबल सहित इलाहाबाद आ रहे हैं।

उनके आगमन से एक महीना पहले मैं सख्त बीमार पड़ गया। कई तरह के इलाज उपचार के उपरान्त पता चला कि ईयोसिनोफ़ीलिया (Eosynophelia) हो गया है और यदि संखिया के इंजेक्शन न लिये जायँगे तो खासा परेशान करेगा। कुछ अजीब सी खाँसी आती थी। साँस रुक जाती थी, नाक से 'कीं कीं' सी होती रहती थी, बदन पसीने से तर और रात को नींद चौपट हो जाती थी। विवश हो मैं इंजेक्शन लेने लगा। तीसरा इंजेक्शन लिया था (कुछ फायदा था, पर बड़ा कमज़ोर हो गया था) कि पृथ्वीराज आ गये। 'दीवार' पहले दिन होनेवाला था। मैंने फ़ैसला कर लिया था कि एक नाटक अवश्य देखूँगा। पत्नी ने यह भी कहा कि तीन दिन आराम करके एक और देख लीजिएगा। 'पठान' देखना उस स्थिति में कठिन था। इसलिए सोचा कि पहले दिन 'दीवार' ही देखा जाय, तीन दिन आराम करके यदि सम्भव हो तो 'कलाकार' देख लेंगे और कौशल्या (मेरी पत्नी) पहले दिन की सीटें बुक करा आयी।

पृथ्वीराज उसी दिन इलाहाबाद पहुँचे थे, इसलिए नाटक के आरम्भ होने में कुछ देर हो गयी। पर्दा उठने के पहले नाटक की पोशाक पर एक ड्रेसिंग गाउन पहने वे पर्दे के बाहर आये और उन्होंने एक भाषण दिया। मैं मानूंगा कि वह भाषण मुझे बुरा नहीं लगा। कदाचित् मेरा

पूर्व-ग्रह दूर हो गया था अथवा पृथ्वीराज को देर हो जाने का भय था और वे बहके नहीं। चन्द शब्दों में भारतीय दर्शकों की तुलना यूरोप के दर्शकों से करते हुए उन्होंने हॉल में बैठे लोगों से कुछ ऐसी बातें कहीं जो बड़ी जरूरी थीं। हाल में एक के खाँसते ही दूसरों के खाँस उठने का उल्लेख कर उन्होंने जो फ़िकरे कसे, उन्हें सुनकर मैं डरा, क्योंकि मुझे तो खाँसी आती ही थी। सौभाग्य से मैं तीन यंजेक्शन ले चुका था। इसलिए उस शाम मुझे लज्जित नहीं होना पड़ा। पृथ्वीराज के भाषण के कुछ समय बाद (जितना कि उन्हें मेकअप रूम में बड़ी बड़ी मूंछें लगाने में लगा) नाटक आरम्भ हो गया।

'दीवार' मुझे बहुत अच्छा लगा। पृथ्वीराज के एक्टिंग के सम्बन्ध में तो मैं इतना ही कह सकता हूँ कि जिन्होंने पृथ्वीराज को केवल रजत-पट पर देखा है, वे उसकी कल्पना ही नहीं कर सकते। दीवार में उन्होंने एक ही भूमिका में तीन तरह का पार्ट किया। पहले एक अनपढ़, अशिक्षित लेकिन उदार ज़मींदार का, फिर विदेशी रमणी के सम्पर्क में पढ़-लिख कर अनुदार आधुनिक बन जाने वाले आधुनिक शराबी जागीरदार का, फिर तीसरे अंक में विदेशी प्रभाव से मुक्त हो, पश्चाताप के आतप में जल निखर कर, कुन्दन बन जाने वाले इन्सान का।

'कलाकार' के कलाकार पृथ्वीराज को मैं फिल्म के पर्दे पर देख चुका हूँ। विद्यापति के प्रेमी राजा से वह भिन्न नहीं। शराबी की भूमिका में भी मैंने उन्हें 'इशारा' में देखा है। किन्तु दीवार का पृथ्वीराज मेरे लिए एकदम नाया था। 'दीवार' के पहले अंक में (पठान में भी) उन्होंने जो अभिनय किया, वह मेरे लिए एकदम अभिनव और चमत्कार पूर्ण था। इतना सुन्दर अभिनय मैंने आज तक नहीं देखा। कुछ हिस्से तो इतने सुन्दर थे कि मन मतिष्क पर अमिट असर छोड़ गये हैं। स्टेज पर पृथ्वीराज और उनके अभिनय की भव्यता और विभिन्नता को देखकर पहली बार पता चलता है फिल्म उनके साथ कभी इन्साफ नहीं

कर सकती, कि उनका स्थान, अव्वल और आखिर, रंगमंच और केवल रंग मंच है।

'दीवार' के अन्त में पृथ्वीराज जी से भी भेंट हुई। मैंने उन्हें अपने इम्प्रेशन्ज़ दिये। उन्होंने खेद प्रकट किया कि हम टिकट लेकर क्यों नाटक देखने गये और उन्होंने इच्छा प्रकट की कि हम सभी नाटक देखें। मैं तो बीमार था इसलिए सब नहीं देख पाया। तीन दिन आराम लेकर 'कलाकार' देखा और फिर दूसरी बार जब 'ग़द्दार' और 'पठान' अभिनीत हुए तो 'पठान' देखा। हाँ, कौशल्या ने सब नाटक देखे और मुझे उनके सम्बन्ध में सब-कुछ बताया। पर नाटक देखने की चीज़ है और सुन कर उसके गुण-दोषों की कल्पना नहीं की जा सकती। तो भी समझता हूँ कि इन तीनों नाटकों को देख कर मैंने 'पृथ्वी थीएटर्ज' के सर्वोत्तम नाटक देख लिये।

जहाँ तक इन नाटकों के गुण-दोषों का सम्बन्ध है, उनके बारे में इतना लिखा जा सकसा है कि एक छोटी-मोटी पुस्तक तैयार हो जाय। यहां वह सब लिखना सम्भव नहीं, यद्यपि बार बार वह सब लिखने का मोह होता है। तो भी दो एक बातें कहने का लोभ सम्वरण नहीं होता।

जहां तक रंग-मंच का सम्बन्ध है, पृथ्वीराज ने उसका आधुनिक-करण कर दिया है, पर्दे उड़ा दिये हैं और सेटिंग प्रकृति कर दिये हैं। 'पठान' में, जो शायद नाटकीय कला और अभिनय की दृष्टि से पृथ्वी थीएटर्ज़ का सफलतम नाटक है, एक ही सेटिंग है—गढ़ी के खान के मकान का अहाता, जिसमें सामने वह गोल सा बुर्ज दिखाई देता है, जिस पर चढ़कर शत्रु की गतिविधि देखी जा सकती है, बायीं ओर अन्दर ज़नान-खाने का दरवाजा दिखाई देता है, जिसके बाहर एक ऊँचा चबूतरा बना है। दायीं ओर बड़ा किवाड़ है जो बाहर गली में खुलता है—बस, यही सेटिंग है और सारे का सारा नाटक जो गढ़ी के ख़ान की युवावस्था से वृद्धावस्था तक चलता है, उसी एक सेटिंग में बड़ी सफलता-

पूर्वक सम्पन्न हो जाता है। कहीं कुछ कृत्रिम नहीं लगता। 'दीवार' में भी एक ही सेट—जमींदार की चौपाल है। जिसमें दायें-बायें दो दरवाजे हैं। एक खिड़की पीछे है जिससे गाँव के खेत-खलिहान दिखायी देते हैं। दायें-बायें दो सीढ़ियाँ ऊपर की मंज़िल को जाती हैं, सामने ऊपर, जहाँ दोनों सीढ़ियाँ मिलती हैं, एक बालकनी बन गयी है। बालकनी में एक दरवाजा है जिससे दाखिल होते ही ऊपर की मंज़िल में दायीं ओर बड़े भाई और बायीं ओर छोटे भाई का निवास-स्थान है। सेटिंग के अन्तिम दृश्य में केवल मध्य में खड़ी की जाने वाली दीवार के रूप में ज़रा सा परिवर्तन होता है। यह नाटक भी लगभग सारे का सारा एक ही सेटिंग में सम्पादित होता है। कलाकार में दो सेट हैं और दोनों में महान अन्तर है। एक पहाड़ी मन्दिर और डाक-बंगले के मध्य कुछ खुली सी जगह का बड़ा ही मनोरम दृश्य प्रस्तुत करता है (जहां से पहाड़ों और उनकी भव्यता का बड़ा सुन्दर नज़ारा किया जा सकता है) दूसरा एक कलाकार का ड्रायिंग रूम है। इन्हीं दो सेटों में यह सारे का सारा नाटक खेला जाता है।

नाटक का समय भी पृथ्वीराज के यहाँ कम हो गया है। पृथ्वी थीएटर्ज के नाटक दो-अढ़ाई घंटे चलते हैं। और पुराने नाटकों से जो पाँच पाँच घण्टे तक चलते रहते थे, एकदम भिन्न हैं। अंक भी यहाँ पाँच-पाँच न होकर तीन ही तीन हैं। और प्रत्येक अंक में दृश्य भी अधिक नहीं। यदि 'मदन थीएटर्ज' मदन फिल्म कम्पनी में परिवर्तित न होकर अपने नाटकों की अवधि को कम करके प्रकृत सेटिंग में खेलने लगता तो भारत में नाटक का ह्रास न होता। पर तब कदाचित् ऐसा होना कठिन था। राधेश्याम, बेताब और आग़ा हश्र काश्मीरी के लिए एकदम नयी तर्ज के नाटक लिखना और उस समय के प्रोड्यूसरों के लिए, जिनमें अधिकांश स्वयं पुरानी तर्ज के एक्टर थे, उन्हें समझ पाना और खेलने को तैयार हो जाना लगभग असम्भव था। यह इतने वर्षों का व्यवधान, जो पुराने और नये रंगमंच के मध्य आ गया, भारत ऐसे गुलाम देश के यहाँ आवश्यक ही था।

पृथ्वीराज ने हमारे देश के मरे हुए हिन्दी रंगमंच को पुनः जिलाने में कितना बड़ा काम किया है, इसे हम अभी नहीं आँक सकते। देशीय रंग-मंच के इतिहास में उनके इस कृतित्व का भारी महत्व है। हमारे रंगमंच को विदेश के रंग-मंच के बराबर आने में कदाचित् अभी बड़ा फासला तय करना है। स्वप्न नाटक, फान्तसी, इम्प्रेशनिस्टिक नाटक, रूमानी, बदलते दृश्यों वाले नाटक और जयशंकर प्रसाद, द्विजेन्द्र लाल राय आदि हमारे पुराने नाटककारों की कृतियाँ बिना पर्दों के स्वाभाविक सेटिंग में दिखाने योग्य घूमते हुए रंगमंच को (जहाँ एक साथ कई सेट तैयार रखे जा सकें) बनने में अभी काफी साधन और समय दरकार है। किन्तु पृथ्वीराज ने हिन्दी के मृत रंगमंच को पुनः जिलाकर आधुनिक नाटक की सम्भावनाओं को देश के सम्मुख तो रख दिया और इस महत् कार्य के लिए देश उनका जितना भी आभार माने कम है।

अन्याय होगा यदि मैं पृथ्वी थीएटर्ज के अन्य कलाकारों, विशेषकर उज़रा बट्ट, ज़ोहरा सहगल, श्रीराम, सुदर्शन, सेठी और शम्मी कपूर का उल्लेख न करूँ। शम्मी अभी किशोर है, उन्हें बहुत कुछ सीखना है। पर शेष का अभिनय बड़ी ही उच्च कोटि का था।

एक बात जो मुझे पृथ्वी थीएटर्ज़ के तीनों नाटकों में खटकी (जिसके लिए यों व्यवसायिक पृथ्वीराज मेरी बधाई के पात्र हैं) वह यह, कि उन्होंने तीनों ही नाटकों में किसी न किसी प्रकार नृत्य को रखा है। उस समय जब एक भी प्रोड्यूसर ऐसी फिल्म नहीं बना सका, जिसमें रोते-हँसते गाना न हो, वहाँ पृथ्वीराज ने स्टेज से उस प्रकार के गानों का बहिष्कार करके बड़ा काम किया है। तो भी नृत्य का बहिष्कार शायद वे भी नहीं कर सके। और इस प्रकार मेरे ख्याल में उन्होंने अपना घेरा सीमिति कर लिया है। अपने अन्तिम नाटक के लिए 'कलाकार' का चुनाव उन्होंने अनजाने में नहीं किया। नाटक कमज़ोर है, पर नाच-गाना

और रूमानी वातावरण उसे अपने साथ उठा ले जाता है। हालाँकि अच्छा नाटक नाच-गाने के बल पर नहीं, अपने कथानक उसके अन्तर्भूत द्वन्द्व, चुस्त चुटीले सम्वादों और अभिनेताओं के सुन्दर अभिनय के बल पर चलना चाहिए। व्यावसायिक आवश्यकताओं को मैं समझता हूँ। नाच और गाने न हों, ऐसी बात भी नहीं और पृथ्वीराज ने उनका समावेश कम से कम 'दीवार' और 'पठान' में बड़ी सुन्दरता से किया है। पर जीवन में हम नाचते-गाते ही नहीं। हज़ारों ऐसी बातें भी करते हैं जो नृत्य-गान-विहीन होने पर भी नाटकीय द्वन्द्व से ओत-प्रोत रहती हैं। अपना नाटक 'जय पराजय' लिखने के बाद (जिसमें पुरानी तर्ज का नृत्य और गान भी है) मैंने 'स्वर्ग की झलक' लिखा (जिसमें निर्देशक चाहे तो नाच-गाना रख सकता है) पर 'छठा बेटा' में मैंने उसे बिल्कुल उड़ा दिया। पिछले दिनों वह इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के म्युर हास्टिल (अमरनाथ झा हॉस्टल) में खेला गया, और दर्शक पूरे एक घण्टे तक निरन्तर हँसते रहे और क्षण भर को भी कोई न उकताया। निर्देशक ने पात्रों का चुनाव बड़ी कुशलता से किया और उन्होंने सम्वाद के बहुत से व्यंग्य बड़ी अच्छी तरह अदा कर दिये। इसके लिए निर्देशक सी० डी० पांडेय और उनके सहयोगी अभिनेता बधाई के पात्र हैं। किन्तु यदि लेखक के दृष्टिकोण से देखा जाय तो जिसे देखकर दर्शक हँसी के मारे लोट पोट हो गये। वह केवल नाटक की पैरोडी मात्र थी। आधे से ज़्यादा नाटक कट गया था। कुछ पात्र कट गये थे, नाटक का गम्भीर अंश जो कुछ चाहता था, वैसा प्रबन्ध स्टेज पर न हो सका, और लड़कियों का पार्ट लड़कों ने किया। पूरा नाटक पूरे प्रसाधनों के साथ खेला जाता तो दर्शकों का कितना मनोरंजन होता, इसकी कल्पना की जा सकती है। तो भी व्यावसायिक रंगमंच पर वह कितना सफल हो सकता है, इसकी सम्भावनाएँ उस साँझ हम पर प्रकट हो गयीं।

किन्तु व्यवसायिक रंगमंच पर आने के लिए नृत्य-गान-विहीन नाटक को, वह कितना भी सफल और मनोरंजक क्यों न हो, अभी एक युग

दरकार है। पृथ्वीराज जी को भी हमारे अधिकांश फिल्मी प्रोड्यूसरों-डायरेक्टरों की भाँति स्वयं लिखने अथवा नाटक लिखवाने का शौक है (किसी हद तक यह व्यावसायिक प्रोड्यूसर की विवशता भी है) किन्तु जिस प्रकार स्टूडियो से बाहर लिखी गयी कहानियाँ अपनी सफलता के बावजूद अपने आप हमारी फिल्मों तक नहीं पहुँच पातीं, इसी प्रकार स्वतंत्र लिखे नाटक भी बहुत देर तक वहाँ न पहुँच पायेंगे।

लेकिन रंगमंच की उचित प्रगति तभी होगी जब एक ओर इसकी बनावट अति आधुनिक होगी, दूसरी ओर नये नये नाटकों के रूप में उसे नया रक्त मिलेगा।

५, खुसरोबाग रोड
प्रयाग

पैंतरे

पात्र

पहला अंक—रशीद भाई का फ़्लैट

रशीद भाई

बेगम रशीद

आनी

अखतर मुनीर

संगतरे केले वाला

डायरेक्टर कादिर

बेगम कादिर

दूसरा अंक—दादर बार

दादर बार के बैरे और ब्वाय

रशीद भाई

हाशिम

रणजीत

प्राण

रवीन्द्र

सतीश

मनतोश

प्रकाश जी

शहबाज़

इदरीस

तीसरा अंक—शहबाज़ का फ़्लैट

नौकर छोकरा

गुजराती मैनेजर

पंजाबी

पंजाबिन

शहबाज

एक युवक

गुजराती मालिक

पंजाबिनें

प्रकाश जी

सतीश

रफ़ीक

तसमीन ख़ातून

रशीद भाई

बेगम रशीद

आनी

पहला अंक

[पर्दा रशीद भाई के फ़लैट की बालकनी[1] में खुलता है। रशीद भाई का यह फ़लैट शिवाजी पार्क बंबई में कैडल कोर्ट, कैडल रोड के तीसरे माले[2] पर है। इस बालकनी के साथ दो और कमरे इस फ़लैट में हैं। उत्तर भारत के किसी निवासी के लिए दो कमरे का फ़लैट जितना नगण्य हैं, उतना बम्बई वासियों के लिए नहीं। बम्बई में ऐसे फ़लैट के लिए तीन हज़ार से पांच हज़ार तक पगड़ी[3] ली दी जाती है। और फिर ऐसा फ़लैट जहाँ से दादर अथवा चौपाटी का नज़ारा किया जा सके, लगभग दुर्लभ है। इस दृष्टि से रशीद भाई बड़े भाग्यवान् हैं। अपनी इस छोटी सी बालकनी को भी उन्होंने छोटी छोटी चर्खियों के बल पर उठने और गिरने वाले पर्दे लगा कर, एक छोटा सा कमरा ही बना लिया है। यहाँ उन्होंने अपना ड्राइंग रूम बना रखा है।

बालकनी में दायीं-बायीं दीवार में दो दरवाज़े हैं। दायीं दीवार का दरवाज़ा बाहर सीढ़ियों में खुलता है और बायीं का अन्दर कमरे को जाता है। सामने पक्की ईंटों का जंगला बना है जिसका पृष्ठ-भाग बड़ी सुन्दर गोलाई लिये हुए है।

---

१ बालकनी = बारजा; २ माला = मंज़िल; ३ पगड़ी = नज़राना अथवा रिश्वत।

इस समय बालकनी के पर्दे उठे हुए हैं। सामने जंगले के साथ बेगम रशीद खड़ी स्वेटर बुनती दिखायी देती हैं। एक पाँव उनका बेंत की एक कुर्सी पर है और जंगले का सहारा उन्होंने ले रखा है। सामने—दूर सागर की लहरें तट की ओर आती दिखायी देती हैं। सागर ज्वार पर है और फेन की दीवार सी तट के साथ बनती-मिटती चली जा रही है।

बालकनी के फर्श पर दरी बिछी है और कुछ बेंत की हल्की फुल्की कुर्सियाँ पड़ी हैं, जिन पर कढ़ी हुई गद्दियाँ रखी हैं। एक ओर दीवार से मेज़-कुर्सी भी लगी है जिसके ऊपर दीवार में एक दर्पण लगा है। मालूम होता है कि रशीद भाई यहाँ बैठकर काम भी करते हैं और शेव आदि भी बनाते हैं।

इस समय यद्यपि दिन के बारह बजे हैं, पर बालकनी का सामान अस्त-व्यस्त है। शायद नौकरानी ने सुबह सजाया हो। पर जिस घर में इंसान बसते हों और वे कुछ खुली तबीयत के लोग हों, साहित्य के सृजन का दम भरते हों और गृहणी पतली दुबली, सिकुड़ी सड़ी, चिढ़चिढ़े स्वभाव की रमणी न हो, वहाँ चीज़ों का, विशेषकर हल्की-फुल्की बेंत व बाँस की कुर्सियों का, इधर-उधर हो जाना कोई असाधारण बात नहीं।

बेगम रशीद युवा हैं, पचीस छब्बीस वर्ष की वयस, गदराया दोहरा शरीर और ओंठों पर मन्द मुस्कान, दरी के साथ लटकता ग़रारा और जम्पर पहने हैं। दुपट्टा साँप सा, कुण्डली मारे, ग्रीवा से उलझा है।

तभी काल बैल बज उठती है, बेगम रशीद मन्थर गति से दरवाज़े की ओर को जाती हैं।

काल बैल फिर बज उठती है, जिससे आगंतुक की व्यग्रता स्पष्ट लक्षित है। साथ ही रशीद भाई की आवाज़ आती है।]

रशीद भाई : (बाहर से) आनी...आनी... !

[बेगम रशीद चाल तेज़ नह करतीं तब तक रशीद भाई तीसरी बार काल बेल बजा देते हैं। और अंगुली बटन पर रख कर उठाने का नाम नहीं लेते और घंटी निरन्तर बजती जाती है।]

बेगम रशीद : (दरवाजे की चिटखनी खोलते हुए, तनिक हँसकर) क्या बच्चों की तरह घंटी बजाये जा रहे हो। खोल तो रही हूं।

[दरवाजा खोलती है— रशीद भाई झपाके से प्रवेश करते हैं। मँझले कद के मोटे आदमी हैं। मोटे, लेकिन थल-थल पिल-पिल नहीं। उनके गाल, गर्दन, बाजू, पेट, रान, पिंडलियाँ— सब उनके कद को देखते हुए अपेक्षाकृत माँसल हैं, परन्तु माँस कहीं लटकता नहीं—न उनके फूले फूले गालों पर, न गर्दन पर, न पेट पर, न और कहीं। कदाचित् यही कारण है कि इस मोटापे के होते भी उनमें काम करने की अपूर्व शक्ति हैं। वे फिल्मों के लिए गीत लिखते हैं, कहानी, सिना-सिनारिय और सम्वाद लिखते हैं। अवसर मिलने पर अभिनय भी कर लेते हैं। लेकिन इस सब निष्टा और परिश्रम के बावजूद (उनका गुजारा चाहे चलता रहा हो) उन्हें ख्याति पाने का समुचित संयोग नहीं मिला।

उनकी प्रतिभा (ऐसा उनका विचार है) स्टंट फिल्मों की दलदल में खतम हुई जा रही है और वे निरन्तर उसे बचाने के प्रयास में लगे रहते हैं।

इस समय उनकी आकृति पर कुछ विचित्र उल्लास और आवेश है। अन्दर आते ही नौकरानी को आवाज़ देते हैं :]

रशीद भाई : आनी... आनी !

बेगम रशीद : बात क्या है ?

रशीद भाई : वह आनी किधर है बेगम (फिर जोर से आवाज़ देते हैं) आनी !

आनी : (दूर से) जी साब !

रशीद भाई : (ज़ोर से) चाय का एक गरम गरम प्याला लाओ।

आनी : (वहीं से) अच्छी लाता है साब !

बेगम रशीद : क्या बात है, आज बड़े खुश नजर आ रहे हो।

रशीद भाई : (उल्लास से एक हाथ पर दूसरा हाथ मारते हुए) आज मैंने डायरेक्टर कादिर को फाँस लिया।

बेगम रशीद : डायरेक्टर कादिर !

(आँखों में भाव कि यह किस जानवर का नाम है।)

रशीद भाई : अरे डायरेक्टर कादिर को नहीं जानतीं। (बेजारी से सिर हिला कर) बस, यही मेरी सबसे बड़ी ट्रेजेडी है।

[बालकनी में एक चक्कर लगाते हैं, बेगम रशीद एक कुर्सी पर बैठकर चुपचाप स्वेटर बुने जाती हैं।]

— : मैं फिल्मी दुनिया में नाम पाना चाहता हूँ और मेरी बीवी को फिल्मी दुनिया से छत्तीस का भी

नाता नहीं। लोगों की बीवियाँ हैं कि घर में रहते हुए भी दुनिया जहान की खबर रखती हैं। पार्टियों में जाती हैं तो अपनी बातों, अपनी हँसमुखता और मिलनसारी से अपने शौहरों के लिए रास्ता बना देती हैं और एक तुम हो कि पार्टियों में जाना तो दूर रहा, घर में भी किसी को बुलाओ तो ढंग से बात नहीं करतीं। तुमको...

बेगम रशीद : बात डायरेक्टर कादिर की हो रही थी और आप...

रशीद भाई : यही तो मैं कह रहा था कि जब तुम फ़िल्मी दुनिया से दिलचस्पी ही नहीं रखतीं तो तुम्हें क्या मालूम हो कि डायरेक्टर कादिर किस सालन के साथ पुरसे जाते हैं। (अपनी बात पर ऐसे ज़ोर देते हुए जैसे अपनी बीवी को विज्ञान के किसी नये आविष्कार का पता दे रहे हो) जाने-मन,* डायरेक्टर कादिर किसी ज़माने में इस्लामिया कालेज लाहौर के प्रोफ़ेसर थे, पर कामयाबी उन्हें एज्यूकेशन में नहीं, फ़िल्मी लाइन में मिली। 'रतन फ़िल्म कम्पनी' ने लाखों रुपया उन्हीं की बदौलत कमाया। एक के बाद एक 'हिट'† फ़िल्म उस कम्पनी के लिए उन्होंने बनायी। तुमने नाम तो सुना होगा 'नयन मतवारे', 'मोरे आँगन में' और 'हाय दिल'। 'हाय दिल' तो हम देखने भी गये थे।

बेगम रशीद : (पूर्ववत् स्वेटर बुनते हुए) मुझे याद नहीं, मैं तो सो गयी थी। मुई इन फ़िल्मों में होता भी है कुछ? कहाँ

---

*जाने मन = मेरी जान †हिट फिल्म = सफल फिल्म—कला की दृष्टि से नहीं, लोक = प्रियता की दृष्टि से।

होती है ऐसी मुहब्बत जो मरे इन फ़िल्मों में दिखाते हैं।

रशीद भाई : (बेज़ारी से सिर हिलाते हुए जँगले की ओर जाते हैं।)

तत...तत...तत...तुम भी बेगम...(एकदम मुड़कर वापस आते हुए) अरे मेरी जान, अगर ऐसी मुहब्बत ज़िन्दगी में होती तो लोग फ़िल्म देखने जाते वहाँ ? नहीं होता, जभी तो जाते हैं। फ़िल्म कम्पनियों वाले लोगों के फ़ायदे को नहीं, अपने फ़ायदे को सामने रख कर फ़िल्में बनाते हैं। लोगों को क्या चाहिए, इसकी वे चिन्ता नहीं करते, लोग क्या चाहते हैं,इसका ध्यान रखते हैं। और डायरेक्टर कादिर इस फ़न में जितने माहिर हैं, उतना एक भी आदमी इस फ़िल्म इंडस्ट्री में नहीं। उनका हाथ लोगों की नाड़ी पर है। कब उन्हें 'लैला मजनूं' जैसी कहानी चाहिए, कब 'सिकन्दर और पोरस' की ? कब 'दर्द भरे गाने' चाहिएँ और कब शहीदों के गीत ?—यह सब वह खूब जानते हैं। यही वजह है कि उनकी हर फ़िल्म 'हिट' होती रही है। पिछले साल अचानक उन्हें दिक़ हो गई थी। सेनेटोरियम में बीमारी के दिन काटते हुए उन्होंने चार फ़िल्मों के सिनारियो लिख डाले। आते ही 'संगम फ़िल्म्ज़' से उनका कान्ट्रेक्ट हो गया। (आवेश में बालकनी का एक चक्कर लगाकर) आज मिस शमीम के फिल्म का महूर्त और पार्टी थी। वहीं पार्टी में उनसे मुलाक़ात हो गयी और मैंने ऐसा जादू जगाया कि आज शाम वे हमारे यहाँ चाय पर आ रहे हैं। क्यों ?

(गुनगुनाते हुए कमरे में घूमते हैं) डाँ, डाँ, ड डर डाँ, डाँ...ड डर डाँ, डाँ, डर डाँ !

(नौकरानी को आवाज़ देते हैं।)

— : आनी आनी !

आनी : लाता है साब !

रशीद भाई : तुम सोच ही नहीं सकतीं कि किस सफ़ाई से मैंने कादिर साहब को अपने बस में किया है। 'नयन मतवारे' में उन्होंने हीरोइन की दोनों आँखों का जो बे-मानी[1] क्लोज़-अप दिया है, उसके मतवाले-पन में ज़मीन आसमान एक कर दिये, 'मोरे आँगन में' के नाम की तारीफ़ की...'अहा हा अहा हा' मैंने कहा, 'क्या नाम रखा है आपने फ़िल्म का ? 'मोरे आँगन में' ! क्या बात है ! नाम ही इतना दिलचस्प है कि लोग उसी से खिचे सिनेमा हाल में चले जाते थे,......'हाय दिल' के प्लाट की दाद दी...'कैसी दर्द भरी कहानी है' ? मैंने कहा, 'हम लोग फ़िल्म देख कर बाहर निकले तो आप से आप हाथ दिल पर चला गया। और जो हमारी हालत थी, वही दूसरों की थी।'...हम जुदा हुए तो मैंने हौसले से काम लेकर कादिर साहब और उनकी बेगम को चाय की दावत दे दी। उन्होंने ब-हज़ार-खुशी मंजूर कर ली। (व्यस्त होते हुए) अब देखो बारह बजे हैं, खाने की तुम फ़िक्र न करो, मैं स्टूडियो में खा आया हूँ, तुम अभी से शाम की चाय का इन्तज़ाम शूरू कर दो।

---

१ बे-मानी = निरर्थक

[बाहर घंटी बजती है। बेगम रशीद अन्दर कमरे में जाने लगती हैं, रशीद भाई उन्हें हाथ से रोकते हुए बाहर जाते हैं।

आनी चाय का प्याला लिये हुए आती है। रंग काला है, पर जवान घाटन छोकरी है। चेहरे के नक्श तीखे हैं। आँखों में काजल है और भवें, फ़िल्मी अभिनेत्रियों की नकल में, चुन कर कमान सी बना रखी हैं। कपड़े मैले हैं। साफ हों तो उतनी बुरी न लगे। छुटपन से बम्बई के कास्मोपालिटन जीवन में विभिन्न साहबों के यहाँ काम करती आयी है और अब उसके उच्चारण में पुरतगाली, ईरानी, मराठी, गुजराती और हिन्दुस्तानी का विचित्र सा समिश्रण है। 'ध' को 'द' और 'द' को 'ढ' बोलती है और 'ह' खा जाती है।

बेगम रशीद : अरे तू प्याले में बना लायी चाय।

आनी : साब जो बोला था एक कप चाय लाने को।

बेगम रशीद : पर साब तो बाहर चला गया और चाय यहाँ ठंडी हो जायगी। तुम्हें बीस बार कहा है कि छोटी ट्रे में चाय लाया कर, टी-कोज़ी[1] रख कर। पर तू एकदम गधी है। ज़रा नहीं समझती।

आनी : गड्ढी क्या मेम साब !

बेगम रशीद : गधी...गधी नहीं समझती। (तनिक हँसकर) गधी मतलब भोली। (आया मुटर मुटर तके जाती है।) भोली भी नहीं समझती। अरे वो जिसे अंग्रेज़ी में कहते हैं Innocent—इन्नोसेण्ट !

१टी कोज़ी=चाय को गरम रखने वाला ऊनी या रुईदार ग़िलाफ़

आनी : (एकदम शर्माकर) ओ ! हम समझ गया। हमको जइसा साब बोला वइसा हम लाया। हम अबी दूसरा चाय ट्रे में लाता है। एक कप मेम साब तुम पी लो।

बेगम रशीद : जभी तो कहती हूँ कि तू एकदम गधी है।

(आया शर्माती है।)

— : मैं कभी पीती हूँ वक्त बे-वक्त चाय। जा यह कप तू ही लेले और साब के लिए छोटे टी-पाट में एक प्याला भर चाय बना ला। टी-कोज़ी से ढक कर लाना।

आनी : बोत अच्छा मेम साब !

[आनी मुड़ने को होती है कि रशीद भाई दरवाज़ा खोल कर आते हैं।]

रशीद भाई : अरे रे रे रे। कहाँ लिये जाती हो चाय ?

आनी : (मुड़ते हुए) हम साब के वास्ते ट्रे में चाय लाने को जा रहा था।

रशीद भाई : अरे लाओ। ऐसे ही चलेगा। घण्टे में बना कर लाओगी ट्रे में और तलब ही तब तक मर जायगी।

(बढ़ कर प्याला ले लेते हैं।)

बेगम रशीद : कौन था ?

रशीद भाई : (चाय की चुस्की लेकर हँसते हुए) एक एक्टर था। 'संगम फिल्म्ज़' में कोई छोटा-मोटा काम करता है। कम्बख्त ने कहीं मुझे डायरेक्टर कादिर को दावत देते और उन्हें मंजूर करते देख लिया। बस पहुँच

गया पालसन[1] का डिब्बा लेकर। इसे कहते हैं चाबुक दस्ती। (फिर चुस्की लेकर) उड़ते पंछी के पर गिन सकते हैं यहाँ फ़िल्मों में। किसी कम्पनी में किसी नये आदमी के आने का एक फ़ीसदी भी इमकान[2] हो तो छुट-भइये लोग जा घेरते हैं उसे। किसी डायरेक्टर ने किसी का नाम लिया कि हमारे ख्याल में फ़लां[3] अच्छा अदाकार या गीतकार या कथाकार है कि जा पहुँचे यार लोग उसके यहाँ और इससे पहले कि वह कम्पनी में पहुँचा, वे उसके तुफ़ैलियों में शामिल हो गये। जो इस फ़न में जितना ताक़[4] होता है, उतनी ही जल्दी वह एकस्ट्रा से एक्टर, एक्टर से हीरो, हीरो से डायरेक्टर, डायरेक्टर से प्रोड्यूसर बन जाता है। (चाय का लम्बा सा घूंट भरते हैं) अभी मैं तो डायरेक्टर कादिर को दावत दे नहीं पाया, पर मुझे दावत देने वाले आ गये।

[जोर से ठाहका लगाते हैं और गुजरातियों की भाँति चाय को तश्तरी में उँडेल कर पीते हैं]

— : देखो मेरी जान अब उठो, मैं इस मौके का पूरा फ़ायदा उठाना चाहता हूँ। इस पहली सीढ़ी पर कदम अगर जम गया तो ऊपर पहुँचना मुश्किल नहीं। ऐसी चाय पिलाओ डायरेक्टर कादिर और उनकी बेगम को...

---

१ पालसन = प्रसिद्ध मक्खन का ब्रैंड है—बम्बईया हिन्दुस्तानी में पालसन खुशामद का प्रतीक है। २ एक फ़ीस दी इमकान = एक प्रतिशत सम्भावना। ३ फ़लां = अमुक। ४ ताक़ = निपुण

बेगम रशीद : पर मैं तो आज शाम सादिक़ा के जा रही हूँ।

रशीद भाई : (तश्तरी और प्याले समेत—दायें हाथ में प्याला और बायें तश्तरी—दोनों हाथ फैलाते हुए) नहीं... नहीं...नहीं...नहीं...सादिका के यहाँ तुम नहीं जा सकतीं। सादिका तुम्हारी बहन है तो मेरी साली है। मेरा भी उस पर कुछ हक है। मैं उसे समझा लूंगा। ज़िन्दगी में मुझे इतना बड़ा मौका मिला है और तुम उसे यों चौपट कर देना चाहती हो। तुम देख नहीं रहीं, मेरी सारी काबलीयत स्टंट फ़िल्मों की दलदल में खत्म हुई जा रही है। क्या मैं स्टंट फिल्मों ही लायक़ हूँ? 'नयन मतवारे' और 'मोरे आँगन में' जैसी कहानियाँ मैं नहीं लिख सकता। मुझे एक बार किसी सोशल पिक्चर की कहानी, कहानी न सही डायलाग ही लिखने का मौका मिल जाय तो मैं दिखा दूँ कि मुझमें क्या काबिलियत है। एक बार मौका मिला कि मैं इस स्टंट फ़िलमों की दलदल से सदा के लिए निकल जाऊँगा और एक दिन तुम मुझे प्रोड्यूसर की कुर्सी पर बैठे देखोगी।

बेगम रशीद : (अन्ततोगत्वा वह आकांक्षाहीन नारी स्थिति के महत्व को समझ जाती है।) सादिका को समझाना तुम्हारा काम है।

रशीद भाई : हाँ—हाँ—हाँ! मैं समझा लूँगा उसे। बस तुम उठ कर अब चाय का इन्तज़ाम शुरू कर दो। ऐसी चाय और उसके साथ ऐसा नाश्ता खिलाओ कि डारेयक्टर कादिर बस यहीं के हो रहें।

[बातों बातों में चाय यथेष्ट ठंडी हो गयी है, इसलिए रशीद भाई एक ही घूंट में उसे समाप्त कर देते हैं।]

बेगम रशीद : पर घर में तो चाय की पत्ती के सिवा कुछ है नहीं।

रशीद भाई : (खाली प्याला आनी को देते हुए जो उसे लेकर चली जाती है) तुम घर को ठीक ठाक कराओ, मैं अभी जाकर बाज़ार से सब चीज़ें लाता हूँ। और देखो, इस कम्बख़्त आनी को कोई धोती ओती दो कितने गन्दे कपड़े पहन रखे हैं इसने ! बस उठो मेरी रानी।

(नाचते से गुनगुनाते घूमते हैं।)

डां डां, ड डर डां, डां, ड डर डां, डां,
डर डां !

(फिर तत्काल दरवाज़ा खोल कर चले जाते हैं।)

— : (जाते जाते फिर पलट कर) बस घंटे भर में सारी चीज़ें लेकर आता हूँ।

(फिर दरवाज़ा बंद कर चले जाते हैं। पर्दा गिरता है)

[कुछ क्षण बाद पर्दा फिर उठता है। बालकनी पहले की अपेक्षा ज्यादा साफ़ और सजी-सँवरी है। आनी उजली साड़ी और ब्लाउज़ पहने मेज़ों पर नये कवर बिछा रही है। तभी काल बेल बजती है और रशीद भाई की आवाज़ आती है।]

रशीद भाई : आनी...आनी !

आनी : (जल्दी से मेज़पोश छोड़कर) आया साब।

[बढ़कर दरवाज़ा खोलती है। रशीद भाई कई लिफ़ाफे लिये प्रवेश करते हैं।]

रशीद भाई : लो मैं यह सब ले आया हूँ। शामी कबाब तैयार हुए कि नहीं ? डायरेक्टर कादिर तो आने ही वाले होंगे। चार बजने को हैं।

आनी : (लिफ़ाफे लेते हुए) जी साब।

रशीद भाई : और मछली के कबाब ?

आनी : जी साब !

रशीद भाई : (क्षण भर वहीं खड़े कमरे का निरीक्षण करते हैं फिर बढ़कर एक चित्र का जाला उतारते हैं) देखो यह जाला नहीं साफ किया तुमने। क्या सफाई करती रही हो ? (पलट कर) और उस तस्वीर पर मिट्टी पड़ी हुई है (बढ़कर रूमाल से झाड़ते हैं) और यह दरी। इसकी सिलवटें तक नहीं निकलीं।

आनी : (लिफाफे मेज़ पर रखते हुए) जी साब अभी निकालता है।

(तभी बाहर घंटी बजती है)

रशीद भाई : (भेद भरे स्वर में) डायरेक्टर कादिर आ गये। आनी तुम भागो। यह सब उठा ले जाओ। और बेगम से बोलो नाश्ता तैयार रखने को। बेगम तैयार तो हैं ?

आनी : जी साब।

[चली जाती है। रशीद भाई झुककर स्वयं दरी की सिलवट निकालते हैं, फिर चलते चलते दीवार पर के शीशे में एक दृष्टि अपने कपड़ों पर डालते हैं, बुश्शर्ट के

कालर और दामन को ठीक करते हैं। तभी घंटी फिर बजती है।

रशीद भाई तनिक खंखारते हैं और दरवाजा खोलते हुए 'आदाब अर्ज़' कहने की मुद्रा में तनिक सा झुक भी जाते हैं, किन्तु जल्द ही उनकी आकृति पर तनाव सा आ जाता है। बाहर और कोई नहीं, उनका मित्र अखतर मुनीर है, जो उन्हें देखते ही ठहाका लगाता है और उन्हें एक प्रकार आलिंगन में लेता हुआ सा अन्दर आ जाता है—नफ़ीस सूट बेपरवाही से पहने, कालर का बटन खोले और टाई की गिरह तनिक ढीली किये, बनावटी बेतकल्लुफी से बात करने वाला छरहरा युवक]

अख़तर : (उसे देख कर रशीद भाई की आकृति पर जो तनाव आ गया है, बिना उसकी ओर ध्यान दिये) भाभी जान से इश्क फरमा रहे थे क्या ? मियाँ इतनी देर से बाहर खड़े हैं और जनाब अब तशरीफ़ लाये हैं। (बालकनी की सफाई और सजावट की ओर लक्ष्य करके) यह बड़ी सफ़ाई उफ़ाई करा रखी है। क्या बात है ? कुछ दावत-आवत का इहतमाम[1] है या……

रशीद भाई : (वहीं दरवाजे को आधा खोले हुए) डायरेक्टर कादिर चाय पर आ रहे हैं।

अख़तर : तो भाई भाभी से कह दो, एक प्याला मेरे लिए भी रख दें ! (बड़े इतमीनान से कुर्सी में धंसते हुए) मुझे डायरेक्टर कादिर ने कई बार बुलाया है, पर मैं

१. इहतमाम = इन्तज़ाम = प्रबन्ध

साली उस 'गाओं की छोरी' के साथ ऐसा उलझा रहा कि एक बार भी नहीं जा सका। फिल्म तो साली बनी नहीं, लेकिन दोस्तों से बुरे जरूर बन गये। आज कादिर साहब को भी शिक्वा न रहेगा कि मुनीर मिला नहीं।

[एक तिपाई को खींच कर उस पर टाँगें फैला लेता है।]

रशीद भाई : (जो पूर्ववत वहीं किवाड़ थामे खड़े हैं) लेकिन उनका गिला तो उनके वहाँ जाने से दूर होगा।

अख़तर : (बिना रशीद भाई की ओर मुँह मोड़े) अरे मैं उनके वहाँ गया या वे मेरे यहाँ आये, एक ही बात है।

रशीद भाई : तुम्हारे यहाँ कब आये!

अख़तर : तुम भी यार निरे बुद्धू हो, तुम्हारा और मेरा घर कोई दो हैं। तुम्हारे यहाँ आये तो समझो मेरे यहाँ आये।

रशीद भाई : (वहीं जमे हुए) लेकिन कादिर साहब के साथ उनकी बेगम भी आ रही हैं।

अख़तर : अरे तो फिर क्या हुआ (आकर उनके कंधे पर बेतकल्लुफी का एक हाथ जमाते हुए) बेगम कादिर तो हमारे वतन की हैं, हमारे ही कालेज में पढ़ती थीं। तुम जरा मेरा नाम तो लेना कि ये मेरे दोस्त हैं, अखतर मुनीर—अफ़साना निगार, जिन्होंने 'जंगल की बेटी' और 'सितमगर' फ़िल्मों की कहानियाँ लिखी हैं और जो अभी 'गाओं की छोरी' प्रोड्यूस

कर रहे थे। फिर देखना कि वह मुझे जानती है या नहीं।

[फिर जाकर कुर्सी को रेलिंग के पास खींच, उस में धँस जाता है और पाँव रेलिंग पर रख लेता है।

रशीद भाई कुछ क्षण वहीं असमंजस में खड़े सोचते हैं। उनके चेहरे पर एक रंग आता है एक जाता है। फिर सहसा जैसे वे किसी निर्णय पर पहुँच जाते हैं। दरवाजा बन्द करके वे खदबदाते से अन्दर की ओर जाते हैं।]

रशीद भाई : (खदबदाते हुए) तुम बैठो, मैं देखूँ तुम्हारी भाभी ने कुछ इन्तज़ाम भी किया है या नहीं, डायरेक्टर कादिर और उनकी बेगम तो आने ही वाली हैं।

[अखतर कुछ उत्तर नहीं देता और समुद्रतटको छूकर मुड़ती हुई फेनिल ऊर्म्मियों के दर्शन में लीन सीट बजाता और रेलिंग पर टिकी हुई टांगें हिलाता रहता है। कुछ क्षण बाद रशीद भाई फिर वापस आते हैं।]

— : बेगम तो गुसलखाने में हैं (हँसते हैं) तैयार हो रही हैं.. (हँसते हुए दूसरी कुर्सी पर बैठते हैं) इन औरतों की तैयारी भी...(हँसते हैं) मेहमान दरवाजे पर खड़ा हो तो ये कंघी पट्टी में जुटजायंगी...(क्षण भर बैठकर उठते हैं) आओ यहाँ क्या बैठे हो। ज़रा नीचे चल कर खड़े होते हैं। डायरेक्टर कादिर कहीं इधर उधर न भटक रहे हों, टाइम तो हो गया उनके आने का।

अखतर : हटाओ यार, बैठे रहो। अगर वह सचमुच आ रहे

हैं तो मकान का नम्बर न भूलगे। कैडल कोर्ट तो शैतान की आँत की तरह मशहूर है।

रशीद भाई : (एक कोशिश और कर देखना चाहते हैं) अरे नहीं यार चलो। वह पहले कभी यहाँ आये नहीं और फिर यहाँ बैठे ही हम कौन सा तीर मार रहे हैं ? नीचे सड़क पर 'दादर बीच' का जाने वाली रंग बिरंगी दुनिया का ही नज़ारा करेंगे।

अख़्तर : (पूर्ववत बैठे हुए) वह नज़ारा तो तुम्हारी इस बालकनी से जैसा हो सकता है, नीचे सड़क से क्या होगा ? जिसे चाहे देखें, पर कोई हमें न देखे !

[ठहाका मारता है, रशीद भाई हारकर फिर कुर्सी में धँस जाते हैं। कुछ क्षण तनाव-भरा-सन्नाटा छाया रहता है, जिसमें अख़्तर केवल सीटी बजाता और टाँगें हिलाता है और रशीद भाई कुर्सी पर कभी एक करवट बैठते हैं, कभी दूसरी करवट। तभी आनी प्रवेश करती है।]

आनी : मेम साब आप को जरा उदर होने को बोलता है इदर नाश्ता लगाने को मांगता है।

रशीद भाई : आओ अख़्तर हम उस कमरे में कुछ देर बैठते हैं। इतने में तुम्हारा भाभी यहाँ चाय का सामान रख देती है।

[अख़्तर अब क्या करे ? विवश उठता है और रशीद भाई के साथ अन्दर के कमरे की ओर बढ़ता है।]

आनी : (उन्हें रोक कर) नहीं इदर नहीं साब, उदर सीढ़ी पर जरा रुकिए, इदर मेम साब बाल बना रहा है।

रशीद भाई : (बनावटी आश्चर्य से) ओ ! आओ अख़्तर ज़रा उधर चलें।

[अख़्तर झुंझला कर पहले आनी की ओर देखता है, फिर रशीद भाई की ओर, पर रशीद भाई उसकी ओर न देख कर उस दरवाज़े की ओर देख रहे हैं, जिसे वे खोलने जा रहे हैं। इसलिए वह चुपचाप रशीद भाई के पीछे चल पड़ता है। दूसरे क्षण दोनों बाहर चले जाते हैं।

क्षण भर बाद बेगम रशीद जूड़ा बाँधती हुई आती हैं।]

बेगम रशीद : कौन था ? साब क्या कहते थे आनी ?

आनी : कोई साब आया था। जाता नेईं था। अपना साब बोला कि आनी तुम आकर बोलो कि तुम लोग उदर जाओ। हम उसको लेकर बाहर चला जायेंगा। मेम साब बाथ रूम से निकले तो बोलना कि नाश्ते का सामान रखे, हम ओ सब को छोड़ कर आता है।

बेगम रशीद : पर था कौन ?......अच्छा हटाओ, तुम यह कुर्सी उधर रक्खो और फिर जाकर बड़ी प्लेटें ले आओ।

[आनी कुर्सी जंगले के पास से हटा कर मेज़ के पास रख देती है और प्लेटें लेने चली जाती है। बेगम रशीद शीशे के सामने रुक कर बालों से निपट; मेज़ का कपड़ा ठीक करती हैं। पैर से दरी की सिलवट निकालती हैं।

दूसरे क्षण आनी प्लेटें ले आती है। बेगम रशीद उससे प्लेटें लेकर मेज़ पर लगाती हैं। तभी रशीद भाई आते हैं और कुर्सी पर धँस कर सुख की एक साँस लेते हैं।]

बेगम रशीद : कौन था ?

रशीद भाई : बलाये-बे-दरमाँ[1]

बेगम रशीद : क्या मतलब।

रशीद भाई : वह एक मिसरा है—'रगे-गुल से बुलबुल के पर बाँधते हैं'[2]। दिल्ली के किसी शायर ने एक मुशायरे में यह तरह दी थी। किसी बाहर के बूदम शायर ने इसकी बारीकी को न समझते हुए तरह मिसरा लगाया।

सुना है कि दिल्ली में उल्लू के पट्ठे
रगे-गुल से बुलबुल के पर बाँधते हैं।

वह उल्लू का पट्ठा अगर कभी बम्बई में आता तो देखता कि बम्बई की फिल्मी जिन्दगी में चाबुकदस्त लोग किस तरह रगे-गुल से बुलबुल के—बैठे बुलबुल के नहीं, उड़ते बुलबुल के—पर बाँधते हैं। वह साला अख़तर मुनीर आ धमका था। पिछले दिनों इसने किसी फनांसर को फांस लिया और प्रोड्यूसर बना घूमता था। मैंने सोचा दोस्त प्रोड्यूसर हो गया, कहानी डायलाग न सही, फिल्म का एक आध गीत ही लिखने को मिल जायगा, लेकिन पट्ठे ने कहानी, डायलाग, गीत, स्क्रीन-प्ले, सिनारियो—सब खुद लिखा और बारह तेरह हज़ार रुपया अपनी जेब में डाल लिया।

---

१ ऐसी बला जिसका कोई इलाज न हो। २ फूल की नस से बुलबुल के पर बाँधते हैं।

बेगम रशीद : गीत कब से कहने लगे मुनीर साहब।

रशीद भाई : (उठकर बालकनी में घूमते हुए) उसके बाप ने कभी एक मिसरा नहीं कहा। किसी टुटपुंजिए गीतकार से दस दस, बीस बीस में लिखवा कर अपने नाम से जड़ दिये होंगे। और क्या ?... मैं मिलने गया तो ऐसे मिला जैसे चलती गाड़ी पर पाँव रखे हुए हो। हराम ज़ादा ! ख़ैर वह कम्पनी तो बैठ गयी और रुपया जैसे आया था वैसे उड़ गया।......आज कल मियाँ किसी नये फनांसर की तलाश में हैं। कड़की[1] आयी हुई है। जरूर इन्हे पता चल गया होगा कि कादिर साहब आज मेरे यहाँ चाय पर आने वाले हैं। सो आ धमके ऐन वक्त पर। मैंने बीस बहानों से टालना चाहा, पर 'ज़मीं जुबंद, न जुबंद गुल मुहम्मद[2] ! और मुझे डर कि कादिर साहब आ गये तो यह हज़रत ऐसे चिपक जायँगे कि मेरा बात तक करना मुश्किल कर देंगे। एक सिरे से पत्ता ही काट दें मेरा तो कोई अजब नहीं। सो चालाकी से उन्हें धता बतानी पड़ी। आनी ने भी ऐसा एक्टिंग किया कि वाह ! खुदा कसम जब भी मैं डायरेक्टर बना, इसे ज़रूर छोटा मोटा रोल दूंगा।

बेगम रशीद : पर मुनीर भाई को क्या ज़रूरत थी इस तरह चिपकने की। तुम्हें काम मिले तो उन्हें खुशी होनी चाहिए। दोस्त......

---

१ कड़की = (बम्बइया हिन्दुस्तानी में तंगी।

२ ज़मीं हिली पर गुल मुहम्मद न हिले

रशीद भाई : जाने मन, यहाँ कोई दोस्त नहीं। यह फिल्मी दुनिया है। यहाँ कट थ्रोट कम्पीटीशन (cut throat competition) है। दोस्त दोस्त को. भाई भाई को गिरा कर आगे बढ़ने से नहीं झिझकता। यहाँ कोई किसी का भाई नहीं, कोई किसी का दोस्त नहीं। सब अपनी गर्ज़ में अंधे बावले......

(बाहर दरवाजे पर दस्तक होती है।)

— : कादिर साहब शायद आगये बेगम। अरे आनी तुम यहाँ खड़ी मुटर मुटर क्या तक रही हो। भाग कर चाय का पानी चढ़ा दो। बेगम तुम देखो कि कबाब गर्म गर्म आयें। यहाँ लाने से पहले उन्हें ज़रा गर्म कर लेना। यह न लगे कि जैसे रेफ्रिजिएटर से निकाले हैं।

[पहले आनी और फिर बेगम रशीद चली जाती हैं। रशीद भाई पलटते हैं, एक नजर बालकनी की सजावट पर डालते हैं। पैर से दरी की सिलवट ठीक करते हैं, उड़ती सी दृष्टि शीशे पर डाल कर बुश्शर्ट के कालर और दामन पर हाथ फेरते हैं। तनिक खँखार कर गला साफ करते हैं और 'आदाब' अर्ज़ कहने की मुद्रा में तनिक सा झुक भी जाते हैं। किन्तु दरवाजा खोलते ही उनकी गर्दन तन जाती है और आकृति पर तनाव आ जाता है क्योंकि बाहर संगतरे केले बेचने वाला है।]

संगतरे वाला : (कंठ के एक विचित्र कोण से) 'संतरा केला पाइजे साब?'[१]

१ संगतरा केला चाहिए साब। 'केला' शब्द में ल अक्षर मराठी उच्चारण के साथ, 'ल' और 'ड़' के बीच, बोला जायगा।

रशीद भाई : (सक्रोध) यह तुमने दस्तक दी थी ?

[दरवाजा खुला छोड़ बेज़ारी से पीछे हट आते हैं । खुले दरवाज़े से संगतरे केले वाला दिखायी देता है ।]

संगतरे वाला : संतरा केला पाइजे साब । बोत बढ़िया वाला संतरा है और वसीन का केला है । एक दम ताज़ा वाला ।

रशीद भाई : (कुर्सी पर बैठते हुए आनी को आवाज़ देते हैं) आनी आनी !

आनी : (अन्दर से) आता है साब ।

रशीद भाई : देखो मेम साब से बोलो । संगतरा वंगतरा माँगता हो तो ले लें ।

(बेगम रशीद प्रवेश करती हैं ।)

बेगम रशीद : (आते हुए) केले तो कुछ ले ही लीजिए, खट्टी मीठी डिश बना लूंगी ।

रशीद भाई : आधी दर्जन संगतरे और आधी दर्जन केले दे दो ।

बेगम रशीद : अरे तो एक एक दर्जन ले लो ।

रशीद भाई : अभी मैं प्रोड्यूसर नहीं बना । स्टंट फिल्मों का डायलाग राइटर हूँ ।

[केले वाला छः संगतरे और केले देता है । बेगम रशीद उसके दिये हुए अधिकांश संगतरे वापस करके स्वयं चुनती हैं । एक आध केला भी वापस कर देती हैं और फिर आनी को आवाज देती हैं ।]

बेगम रशीद : आनी...आनी...

आनी : जी आया ।

(अन्दर से भागी आती है ।)

आनी : जी मेम साब !

बेगम रशीद : ये केले संगतरे उठाकर अन्दर ले जा ।

[आनी केले संगतरे उठाकर अन्दर ले जाती है। रशीद भाई फल वाले को पैसे दे रहे होते हैं कि डायरेक्टर कादिर आ जाते हैं ।]

कादिर साहब : (बाहर से) आदाब अर्ज ।

रशीद भाई : (एक दम घबरा कर और सिर को अदा से झुकाना भूलकर) ओह ! कादिर साहब, आदाब अर्ज़... आदाब अर्ज़...आइए आइए, तशरीफ़ लाइए !

[कादिर साहब के पीछे बेगम कादिर आती है । पतली दुबली, आकृति पर कठोरता मिली चातुरी]

रशीद भाई : (उनके लिए जगह छोड़ते हुए) आदाब करता हूँ बेगम क़ादिर । (अपनी बेगम की ओर संकेत करते हुए) ये बेगम रशीद हैं ।

बेगम रशीद : आदाब अर्ज !

कादिर और बेगम : आदाब अर्ज़, आदाब अर्ज़ ।

रशीद भाई : (मूर्तिमान खुशामद बन कर हिं हिं कर हँसते हुए) आइए, आइए बैठिए । (हँसते हैं ।) अपने खुले ड्राइंग रूम के मुकाबिले में आपको हमारा यह बालकनी-नुमा-ड्राइंग-रूम क्या पसन्द आयेगा । हमारे पास दो कमरे हैं और यह बालकनी । इसी को हमने बैठक खाना बना लिया है

(हँसते हैं।)

बेगम कादिर : यह तो बड़ी सुन्दर जगह है। यह सामने समंदर[1] का किनारा, लहरों का हल्का हल्का शोर और ठंडी हवा।

[जंगले के साथ मन्त्र-मुग्ध सी जा खड़ी होती है।]

कादिर साहब : थका दिमाग यहाँ बैठकर आराम पा सकता है।

(कुर्सी पर बैठ जाते हैं।)

रशीद भाई : (हिं हिं, हिं हिं करके हँसते हैं) बस यही खूबी इस बालकनी में है। सागर के छिन छिन[2] बदलते हुए रंगों को, लहरों के नाच को, किनारे पर बिखरती हुई झाग को, यहाँ से देखकर मन को एक अजब सी शान्ति मिलती है। (हँसते हैं।) लेकिन मुझे तो यह सब देखने की फ़ुर्सत ही नहीं मिलती। पिछले एक साल में तीन फिल्मों की कहानियाँ, चार के डायलाग, पाँच के गीत मैंने लिखे और तीन में एक्ट किया है।

कादिर साहब : अपने इस मोटे जिस्म के साथ आप इतनी मेहनत कैसे कर लेते हैं ?

रशीद भाई : (फिर दाँत निपोरते हुए) बदन मेरा मोटा जरूर है, पर गठा हुआ है। कहीं कोई चुटकी काट कर दिखा दे तो मान जाँय। (हिं हिं करके हँसते हैं।) कई बार छत्तीस छत्तीस घंटे तक काम किया है मैंने, मुझे तो कादिर साहब कोई अच्छा डायरेक्टर ही

१ समन्दर = समुद्र, २ छिन छिन = क्षण क्षण,

नहीं मिला। स्टंट फिल्मों की दलदल में मैं गर्दन तक डूब गया हूँ। कहीं मैं इसमें से निकलूं तो दिखा दूं कि मुझमें क्या जौहर हैं। सोशल कहानी हो, आप जैसा डायरेक्टर मिले तो फिर मेरे डायलाग, मेरे गीत या मेरा ऐक्टिंग देखिए।

बेगम रशीद : माफ़ कीजिएगा, मैं नाश्ता रखवाऊँ।

रशीद भाई : हाँ बेगम तुम नाश्ता रखवाओ और देखो आनी से कहना कि चाय बिलकुल गर्म आये।

क़ादिर साहब : आप काहे तकलीफ़ करती हैं, नौकर ले आयेगा।

बेगम रशीद : अपने घर में हम मालिक भी हैं, नौकर भी।

रशीद भाई : (हँसते हुए) रशीद बेगम को खुद काम करने का बड़ा शौक है। शामी कबाब, मछली के कबाब सब कुछ इन्होंने खुद पकाया है और सच मानिए कादिर साहब, मेरी इस तन्दुरुस्ती और मेहनत का राज़ रशीद बेगम के इस सलीके और सुघड़ता में है। मैं रात रात काम करता हूँ, सुबह आता हूँ, तो हर चीज़ मुझे तैयार मिलती है। इनको फ़िल्मों से कोई मतलब नहीं है, मुझ से मतलब है।

बेगम क़ादिर : (मुड़कर) फ़िल्मों से मतलब होता तो आप से मतलब न होता।

[रशीद भाई हँसकर इस मज़ाक की दाद देते हैं।]

बेगम क़ादिर : (आकर बैठते और लम्बी साँस लेते हुए) बड़ी अच्छी जगह बना है यह फ़्लैट आपका। बड़ा ही खूबसूरत नज़ारा दिखायी देता है समन्दर का यहाँ से।

[आनी नाश्ते का सामान लिये आती है, पीछे पीछे बेगम रशीद दो प्लेटें थामे हैं ।]

रशीद भाई : इधर रखो ट्रे आया ।

बेगम रशीद : आप यह प्लेट थामिए ।

[रशीद भाई बेगम से एक प्लेट लेकर थामते हैं । बेगम रशीद बेगम कादिर के आगे दूसरी प्लेट करती हैं ।]

बेगम कादिर : (एक कबाब उठाते हुए) आप तकलीफ़ न कीजिए, आइए बैठिए, हम सब अपने आप ले लेंगे ।

बेगम रशीद : नहीं नहीं तकलीफ़ काहे की । दो लीजिए न । ऐसे बुरे नहीं बने हैं ।

रशीद भाई : हाँ हाँ दो लीजिए । शामी कबाब बनाने में तो बेगम रशीद बड़े बड़े खानसामों के कान काटती हैं । एक बार फिल्म 'जंगल का दिलावर' की शूटिंग हो रही थी । दिन और रात ! खाना वहीं मँगा लेता था । एक शाम बेगम रशीद ने शामी कबाब बनाकर भेज दिये । डायरेक्टर वाचा वहीं मेज पर बैठे थे । उन्होंने चखे तो बोले—वाह, यह कहां से मँगाये ? मैंने कहा—आप ही के घर से आये हैं । बोले—तब तो भाभी से कहना कि हमारे लिए भी दो चार भेज दिया करें ! और सच जानिए, जब तक 'जंगल का दिलावर' की शूटिंग चलती रही, डायरेक्टर वाचा का खाना मेरे यहाँ से जाता रहा ।

[आनी चाय का सामान लाती है, और बेगम

रशीद सब के प्यालों में चाय और फिर दूध ढालती हैं]

बेगम रशीद : (चीनी का बर्तन उठाते हुए) चीनी कितनी लेंगे ?

कादिर साहब : एक चम्मच !

बेगम रशीद : (बेगम कादिर से) और आप ?

बेगम कादिर : मैं तीन चम्मच लेती हूँ !

(बेगम रशीद प्यालों में चीनी डालती हैं।)

रशीद भाई : (हिं हिं, हिं हिं कर हँसते हुए) पर तीन चम्मच चीनी लेने वाली आप नज़र तो नहीं आतीं। मेरी तरफ़ देखिए हर प्याले में चार चम्मच पीता हूं। (बात का रुख बदल कर) आप लोगों ने 'जंगल का दिलावर' तो नहीं देखा ?

बेगम कादिर : नहीं हमें यह मौका नहीं मिला।

रशीद भाई : ऐसा बढ़िया काम किया है मैंने उसमें कि एक बार डायरेक्टर शान्ताराम ने मुझसे कहा—रशीद भाई अगर मैं स्टंट फिल्में बनाता तो आपको जरूर हीरो का रोल देता। 'जंगल का दिलावर' के डायलाग भी मैंने लिखे थे। डायरेक्टर नीतिन बोस, आप जानते हैं, उर्दू डायलाग बहुत पसन्द करते हैं। उन्होंने 'जंगल का दिलावर' देखा, तो मुझे अपने नये फिल्म के लिए बुलाया। तब डायरेक्टर वाचा मुझे छोड़ने को तैयार न हुए। बहुतेरा कहा कि मुझे इस सोशल फिल्म में काम करने की इजाजत दे दीजिए। पर तीन साल का कान्ट्रेक्ट था, डायरेक्टर वाचा तैयार न हुए और मैं स्टंट फिल्मों की दलदल में फँसा रह गया।

[नीचे लिखे सम्वादों में बराबर चाय पी जाती है ।]

कादिर साहब : कितना वक्त और है आपके कान्ट्रेक्ट खत्म होने को ।

रशीद भाई : यही पिछले महीने खत्म हुआ है । और सोचता हूँ किसी सोशल फिल्म में काम करने का मौका मिले तो इस दलदल से निकलूं । आप तो सुना है, तीन चार सिनारियो लिख लाये हैं सेनेटोरियम से ! अब आपकी तबीयत तो ठीक है न ?

कादिर साहब : (ठीक तो है) लेकिन अगर मिस शमीम या हम किसी दूसरी जगह न चले गये तो यकीनन फिर खराब हो जायगी ।

रशीद भाई : पर आपको किसी दूसरी जगह जाने की क्या जरूरत है ? शमीम वाला मकान तो आपका ही है न ?

कादिर साहब : (व्यंग्य पूर्ण हँसी से) वह तो है, पर उन्हें निकाला तो नहीं जा सकता ।

रशीद भाई : निकाला नहीं जा सकता ?

बेगम कादिर : मकान की कितनी किल्लत है यह तो आप जानते ही हैं । हम तो बीमारी में भी बराबर किराया देते और मकान में किसी को फटकने न देते । लेकिन, शमीम इन्हें देखने सेनेटोरियम गयी थी । नयी नयी लाहौर से आयी थी । मकान की उसे बड़ी दिक्कत थी । मैंने कहीं भूले से कह दिया कि अगर तुम्हें कहीं मकान न मिला तो तुम मेरे यहाँ ही रह लेना ।

बस उसी तकल्लुफ़ की सज़ा भुगत रहे हैं। वह सेनेटोरियम से इन्हें देख कर लौटो तो सीधी हमारे मकान में चली आयी। और आज तक वहीं डटी है।

रशीद भाई : लेकिन मिस शमीम ने आपके लिए कुछ इन्तज़ाम तो कर दिया होगा।

बेगम क़ादिर : इन्तज़ाम कर दिया...हँ...हँ...हँ...तीन कमरों के फ़्लैट में से वह हमें क्या दे देती? एक कमरा है, उसमें क्या आराम मिल सकता है? ये तो बीमार हैं, इन्हें अलग एक कमरा चाहिए।

क़ादिर साहब : एक कमरे से ज्यादा न भी हो, पर शान्ति तो होनी चाहिए। वहाँ तो ऐसे लगता है जैसे आठों पहर मछली मंडी में बैठे हैं।

बेगम क़ादिर : हा हा, हीं ही, हो हो बारहों घंटे मची रहती है। शमीम ने तो यहाँ बम्बई आकर वह रंग जमाया है कि सारा का सारा बम्बई उसका दीवाना दिखायी देता है। नाच, गाना, पार्टियाँ, फ़्लैश, रम्मी ह्विस्ट...किसी पल भी चैन नहीं। इन्हें काम भी करना हुआ। उसका क्या है, सेट पर गयी और चार लफ़्ज़ ग़लत सलत बोल आयी। मुसीबत तो इनकी है, जिन्हें कहानी, सिनारियो, शाट, डायलाग, कैमरे और साउण्ड तक का खयाल रखना पड़ता है इन सब बातों के लिए कुछ तो सोच दरकार है और सोचने लायक शान्ति वहाँ पल भर का भी मयस्सर नहीं।

रशीद भाई : मेरे पास तो यही अढ़ाई कमरे हैं...अगर इस बारजे

को कमरा कहा जाय...नहीं तो मैं आपसे यही कहता कि आप यहीं चले आयें।

बेगम कादिर : आपकी इस मेहरबानी का शुक्रिया। बात जगह की नहीं, सुकून-शान्ति की है। आदमी अच्छे हों, तमीज़ वाले हों तो कमरा छोड़ कोठरी में भी गुजारा किया जा सकता है। पर इसका क्या किया जाय कि ऊँट की कोई कल सीधी ही नहीं। यों तो कहने को जनाब ने डाइनिंग टेबिल सजा रखा है। पर टेबिल मैनर्ज़[1] (Table Manners) की अबजद[2] का भी इल्म नहीं। कपड़े पहनती है तो मालूम होता है जैसे अभी कालेज से डिग्री लेकर निकली है, पर खाने के मेज़ पर देहातियों को भी मात करती है। पानी पीते और खाते समय वह आवाज करती है कि खुदा की पनाह। सालन से हाथ मुंह खराब कर लेती है। और फिर जाने कौन कौन तबलची, सारंगिएँ, सितारिए और नौदौलतिए खाने के मेज पर आ बैठते हैं और इस तरह खाते हैं कि मतली होने लगती है। कभी कभी तो वह 'हू-हक' मचती है कि जी चाहता है, दीवार से सिर फोड़ लें!

बेगम रशीद : (नौकरानी को आवाज देती हैं) आनी...आनी!

आनी : (जो अन्दर दरवाज़े के पास ही आदेश की प्रतीक्षा में खड़ी है) जी मेम साब!

बेगम रशीद : चाय का पानी और ला!

बेगम कादिर : नहीं नहीं अब और न पियेंगे। दो दो कप तो ले

---

१ खाना खाते समय के अदब आदाब। २ अबजद = अलिफ़, बे, जीम दाल = क, ख, ग।

लिये। यों भी हम तो एक एक कप पी के चले थे। चलिए बेगम रशीद आपका फ़्लैट तो देखें।

बेगम रशीद : (उठती हैं) आइए, आइए (नौकरानी से) आनी तुम ये बर्तन उठाओ।

(बेगम कादिर को लेकर अन्दर जाती है।)

रशीद भाई : आप तो एक और कप लीजिए कादिर साहब।

कादिर साहब : मुझे कोई एतराज़[1] नहीं।

रशीद भाई : आनी यह बर्तन रहने दो और टी-पाट में जल्दी गर्म गर्म पानी लाओ।

आनी : अभी लाया साब।

(टी पाट लेकर चली जाती है।)

रशीद भाई : हमें तो खुशकिस्मती से यह फ़्लैट मिल गया कादिर साहब। उधर बन्दरगाह पर जब बारूद का जहाज फटा तो बम्बई में ऐसी भगदड़ मची कि खुदा की पनाह! लोगों ने समझा कि बस अब जापान आया खड़ा है। इस बीच (Beach)[2] पर जहाज नहीं आते। पर दिन भर में यहाँ के सारे के सारे मकान खाली हो गये। हमने अल्लाह का नाम लेकर इस पर कब्जा जमा लिया। यह फ़्लैट न मिला होता तो बम्बई में जो तकलीफ़ें मैंने उठायी हैं, वे मुझे यहाँ से भगा देतीं। अब तो एक ही आरजू[3] है—आप जैसे नुक्तारस डायरेक्टर के कदमों में काम करने का मौका मिल जाय तो बस बम्बई की ज़िन्दगी सफल हो जाय!

---

१. एतराज़=आपत्ति। २. बीच=समुद्र-तट। ३ आरज़ू=अभिलाष

(डायरेक्टर कादिर चुप रहते हैं।)

रशीद भाई : कहानी, डायलाग, स्क्रीन प्ले, सिनारियो, ऐक्टिंग कहीं भी आप मेरी खिदमत ले सकें तो मैं आपका एहसान मानूंगा (हँसते हैं) मैं तो सच मानिए अपने आपको आपका शागिर्द ही समझता हूँ। फ़िल्म की जिन्दगी में मेरा आदर्श आप हैं।

(डायरेक्टर कादिर चुप रहते हैं।)

रशीद भाई : (नौकरानी को आवाज देते हुए) आनी, आनी! चाय का पानी लाओ!

आनी : (आते हुए) ए लाया साब!

रशीद भाई : दो प्याले बनाओ। दूध कम डालना और चीनी एक चम्मच से ज्यादा नहीं।

कादिर साहब : आप तो चार चम्मच लेते हैं।

रशीद भाई : (हिं हिं कर हँसते हुए) मैंने कहा न कि आप मेरा आदर्श है, मुझे मालूम न था कि आप चाय में एक ही चम्मच लेते हैं। (फिर हँसते हुए) अब मैं भी एक ही लिया करूँगा......तो कुछ उम्मीद रक्खूँ?

कादिर साहब : (बिना बँधे) आप एक नयी सो सोशल कहानी लिखिए, मैं जरूर आपकी मदद करूँगा। इस वक्त तो मेरे हाथ भरे हैं...जरा बेगम कादिर को तो आवाज़ दीजिए। उन्हें तो मालूम होता है, दादर बीच बहुत पसन्द आयी। हमें तो अभी प्रोड्यूस-वाडी लाल से मिलना है।

[रशीद भाई उठने को होते हैं कि बेगम कादिर और बेगम रशीद बातें करती हुई आती हैं।]

बेगम कादिर : नहीं मुझे बहुत पसन्द आया आपका फ़्लैट। बंबई की इस घुटन में तो यह जगह बहिश्त है।

रशीद भाई : पसन्द आया आपको ?

बेगम कादिर : पसन्द आया, वाह ! आपका फ़्लैट तो बड़ा ही सुन्दर और खुला है। मैं तो मिस शमीम के साथ उस सारे बंगले में रहने के बदले इस के एक कमरे में खुशी से रह लूँ।

रशीद भाई : (दोनों हाथ फैलाते और सिर को झुकाते हुए) तो कहिए क्या हुक्म है ?

बेगम कादिर : आपकी बड़ी मेहरबानी रशीद भाई। मैं तो सिर्फ़ फ़्लैट की तारीफ़ कर रही थी।

रशीद भाई : नहीं, आपको पसन्द हो तो आ जाइए। हम तो आपके साथ बालकनी में भी रहकर खुश होंगे। और यहाँ आपको और कोई तकलीफ़ चाहे हो, दिमाग़ी परेशानी नहीं होगी। सच !

बेगम कादिर : हम आपके एहसानमन्द हैं रशीद भाई। कभी जरूरत पड़ी तो आप ही को तकलीफ़ देंगे।

कादिर साहब : (उठते हुए) अब चलो बेगम ! काफी देर हो रही है। वाडीलाल हमारा इन्तज़ार कर रहे होंगे...... अच्छा भाई अब आप लोग बैठिए। बहुत बहुत शुक्रिया आपका इस शानदार दावत के लिए (दोनों को उठते देख)...... बैठिए बैठिए आप क्यों तकलीफ़ कर रहे हैं...अच्छा बेगम रशीद इजाजत दीजिए। फिर कभी तकलीफ़ देंगे।

बेगम रशीद : सौ बार, सौ बार ! आपका अपना घर है।

कादिर और बेगम : आदाब अर्ज़ !

बेगम रशीद : आदाब अर्ज़ !

(रशीद भाई उनके साथ चलते हैं)

बेगम कादिर : आप तो बैठिए रशीद भाई।

रशीद भाई : नहीं नहीं, चलिए नीचे तक।

कादिर और बेगम : आदाब अर्ज़ !

बेगम रशीद : आदाब अर्ज़ !

(कादिर साहब और रशीद भाई चले जाते हैं।)

बेगम रशीद : आनी दरवाज़ा लगा दे, यह सब बर्तन उठा ले जा और जाते जाते रेडियो का स्विच घुमाती जा। मैं तो थक गयी सुबह से काम करते करते ।

[कुर्सी घसीट कर रेलिंग के पास लाती है और उसमें धँस कर रेलिंग पर पाँव पसार लेती है।]

आनी : (दरवाजा लगाकर सामान उठाते हुए) क्यों मेम साब, यह कादिर साब, 'हाय दिल' वाला डायरेक्टर है न ?

बेगम रशीद : हाँ हाँ !

आनी : हम ओ फिल्म देखेला[1] है। हमको बोतपसन्न[2] है। मेम साब; हमको फिल्म में काम करने को माँगता है। साब बोलता था हमको सोशल पिक्चर में काम करने को मिलेंगा तो तुमको जरूर रक्खेंगा।

बेगम रशीद : हाँ हाँ तुमको जरूर रक्खेंगा।

(हँस देती है।)

१ – देखा है। २ पसन्द।

आनी : हँसी का बात नहीं मेम साब। साहब बोलता था हमारा पास एक ऐसा कहानी है जिसमें हमको तुम्हारे जैसा आया माँगता है। हम बोत अच्छा काम करेंगा मेम साब। हम तो रोज़ खुदा से दुआ माँगता है कि साब को सोशल पिक्चर में काम करने को मिले। तुम भी साब से बोलना मेम साब।

(सामान उठाये चली जाती है।)

बेगम रशीद : हाँ हाँ जरूर बोलेंगे। तुम जरा वह रेडियो का स्विच घुमाती जाना।

[कुछ क्षण बाद रेडियो से फिल्मी गाने की आवाज़ आती है :]

सहे दुख तेरी खातिर जो, बालम ओ, तू क्या जाने
तू क्या जाने
दिन उजियारा बना विरह में, रात अँधेरी काली
उजड़ गयी मेरे जीवन की बगिया तुझ बिन माली
अपने हुए बेगाने
तू क्या जाने
सहे दुख तेरी ख़ातिर जो, बालम ओ, तू क्या जाने
रिम झिम रिम झिम बरखा रुत की, सखियाँ पैंग बढ़ायें
यह बादल, यह बरखा, बिजली, दिल में आग लगायें
आयें मुझे सताने
तू क्या जाने
सहे दुख तेरी खातिर जो, बलम ओ, तू क्या जाने

[काल बैल बजती है—जल्दी जल्दी दो-तीन बार। बेगम रशीद उठकर चिटख़नी खोलती हैं।]

रशीद भाई : (झपाके से प्रवेश कर अतीव उल्लास से) लो बेगम,

खिलाओ मिठाई। मैं डायरेक्टर कादिर की नयी पिक्चर में डायलाग लिख रहा हूँ।

(उसे बाहों में भर एक चक्कर दे देते हैं।)

बेगम रशीद : (धरती पर पाँव टिकते ही) सच ! (नौकरानी को आवाज देते हुए) आनी, रेडियो बन्द कर दे।

(रेडियो बन्द हो जाता है।)

रशीद भाई : मैं क्या झूठ कहता हूँ। अभी नीचे मोटर में सवार होते वक्त बेगम कादिर ने कहा कि वे अभी प्रोड्यूसर वाडीलाल से मिलेंगे तो नयी पिक्चर के डायलाग के लिए मेरा नाम उनके आगे रक्खेंगे...और तुम्हारा ख़याल है कोई प्रोड्यूसर डायरेक्टर कादिर की बात को रद्द कर सकता है...हरगिज़ नहीं... समझो, हमारे दिन फिर गये।

बेगम रशीद : आपने कैसे ले लिया उनसे इतना जल्दी वादा।

रशीद भाई : यह तुम नहीं समझ सकतीं। फ़िल्मी दुनिया में सिर्फ काबलियत को कोई नहीं पूछता। यह राज़ मैंने बरसों की ठोकरें खाने के बाद जाना है। काबलियत के साथ चतुराई और चाबुकदस्ती की जरूरत है। बल्कि कई तो ऐसे भी हैं, जो काबिल नहीं, पर होशियार और चतुर हैं। अब तुम्हीं कहो, अगर मैंने बेगम कादिर को यहाँ आकर रहने की दावत न दी होती, तो क्या मुझे यह काम मिल जाता? कभी* नहीं। लेकिन मैं जानता हूँ, कहाँ, किस वक्त, क्या कहना चाहिए। वे लोग अपना इतना अच्छा

* कभी को ज़ोर देकर 'करभी' कहते हैं।

फ़्लैट छोड़कर यहाँ क्या आयेंगे, लेकिन मेरी इस पेशकश ने उन पर असर तो किया और इसका फल तो मुझे अभी मिल गया...अच्छा, तो मैं ज़रा शहबाज़ से मिलने जा रहा हूं।

बेगम रशीद : कौन शहबाज़ ?

रशीद भाई : अरे शहबाज़ को नहीं जानतीं, मेरी स्टंट फ़िल्म का हीरो...मुझे रात को जरा देर हो गयी तो घबराना नहीं और खाना खा लेना।

बेगम रशीद : आप दादर बार (Bar)† में जा रहे होंगे।

रशीद भाई : हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता। ऐसे खुशी के मौके पर गला भी न तर किया जाय।

(हँसते हैं। आनी शेष सामान उठाने आती है।)

रशीद बेगम : गला ही तर कीजिएगा या शहबाज़ के कन्धों पर लद कर घर आइएगा।

रशीद भाई : नहीं...नहीं...नहीं...मैं कसम खाता हूँ...और आनी, मैं तुम्हें अपनी नयी फिल्म में जरूर पार्ट दूंगा। बस, जरा मेरे पाँव यहाँ जमे कि मैं आगे बढ़ा। चीरियो।

(चले जाते हैं, पर्दा गिरता है।)

---

† बार=मदिरालय।

दूसरा अंक

[पर्दा दादर बार के पहले हाल में उठता है, यह हाल काफ़ी खुला है। दायीं दीवार के मध्य एक दरवाजा है जो बाहर बाज़ार में खुलता है। सामने की दीवार के बायें कोने में एक दरवाज़ा है जो अन्दर के हाल को जाता है। सामने दीवार के मध्य कांउटर है, जिसके पीछे एक मोटे ईरानी सेठ बैठे पैसे ले दे रहे हैं।

हाल की बायीं दीवार में इस सिरे से उस सिरे तक केबिन बने हैं, जिनके दरवाजों पर पर्दे लटक रहे हैं। सारे के सारे हाल में छोटे छोटे मेजों और हर मेज़ के साथ चार चार कुर्सियों की तीन पंक्तियां लगी हैं। लेकिन ये कुर्सियाँ ऐसे लगी हैं कि बाहर से आने वाले दरवाज़े से केबिनों तक और कांउटर से स्टेज के इस किनारे तक, एक दूसरे को काटते हुए दो मार्ग बन गये हैं।

सामने कांउटर के पीछे दीवार में एक बड़ा भारी पारदर्शी शीशा लगा हुआ है। जिसमें से दूसरे हाल में लगी बिलियर्ड टेबिल और उससे भी परे सामने की दीवार के साथ बनी स्टेज पर आरकेस्ट्रा साफ़ दिखायी देता है।

शीशे के ऊपर लाल रंग में मोटे कला-पूर्ण अक्षरों में लिखा है—'दादर बार'!

शाम का वक्त है, चिराग अभी अभी जले हैं, 'दादर बार' में आवा-जाई शुरू हो गयी है। बैकग्राउंड में आरकेस्ट्रा बज रहा है। बिलियर्ड टेबिल पर भी खेल शुरू हो गया है। केबिनों से ग्राहक और ब्वाय लोग आ जा रहे हैं और हाल में लगी मेजों पर से 'ब्वाय सोडा', 'ब्वाय मटन चाप' या सिर्फ 'ब्वाय'...'ब्वाय'... 'ब्वाय'...की आवाजें उठ रही हैं।

पर्दा उठाने के क्षण भर बाद रशीद भाई दरवाजे से झांकते हैं। एक कदम अन्दर आकर बाहर और अन्दर के हाल में दृष्टि डालते है, बढ़ कर ईरानी सेठ से कुछ पूछते हैं। फिर वापस चले जाते हैं।

बाहर के हाल में दर्शकों की ओर को स्टेज के किनारे लगी तीनों मेज़ों में से दो खाली हैं और केबिनों की ओर की तीसरी पर तीन युवक बैठे हैं। एक उमर में जरा बड़ा है—वयस पैंतीस छत्तीस, चेहरे पर चेचक के दाग, आँखों में चातुरी और नाक उकाब सी वक्र! दूसरा उससे कुछ कम उमर है। देखने ही से एक्सट्रा लगता है। तीसरा सबसे छोटा है। उमर यही कोई पन्द्रह सोलह वर्ष। अच्छे कपड़े पहने है, किन्तु वे उसके पतले दुबले शरीर और लकवे के मारे तनिक टेढे मुख को और भी उजागर करते हैं। थथला कर बोलता है—'र' को 'ल,' 'ल' को 'अ' और 'स' को 'श' कहता है। एक एक पेग सब पी चुके हैं जब कि बड़ी उमर का युवक जिसका नाम हाशिम है बैरे को आवाज़ देता है :]

हाशिम : बैरा ये सब उठा ले जाओ और एक बड़ा और दो छोटे पैग और लाओ!

प्राण : (छोटी उमर का युवक) नहीं हाशिम भाई अपने औल लणजीत भाई के इए मंगाइए। मेए इए तो इतनी ही बहुत है। आज ही पही बाल मुँह अगायी है।

हाशिम : अरे मियाँ तेल और ग्रीज़ मलकर, साथ में तिरैरी[1] ले पानी में कूदे तो पा चुके तैराकी का मज़ा। फिल्म के इस सागर में तो डूब कर ही उतरा जाता है। हाथ और पांव में इतना जंजीरें बांध कर चलना था तो घर से निकले ही क्यों थे—पड़े माँ की गोद में आराम करते (बैरा से जो पक्के आर्डर की प्रतीक्षा में खड़ा है) तुम लाओ बैरा। साथ में एक एक प्लेट शामी भी मांगता है।

रणजीत : हम घर से चले थे तो हम भी तुम्हारी तरह ज़ाहिद[2] थे, पर बम्बई में जोहूद और पारसाई को कोई नहीं पूछता। देख लो पाँच ही साल में रिन्द बन गये।

(लड़खड़ाती आवाज़ में धीरे धीरे गाता है:)

मस्ती पे जो आयें हम साकी
हम ऐसे रिन्द खराबाती
हस्ती क्या है इक साग़र की
खुम के खुम पी, लुढ़का जायें !
ज़ाहिद को रिन्द बना जायें

न बनते रिन्द तो करते भी क्या (अपने आप हँसता है)

---

१ तिरैरी = तैराने वाली = Life Buoy = डूबने से बचानेवाली हवा भरे रबड़ की मश्क आदि। २ ज़ाहिद-परहेजगार

वापस जाते तो मा बाप की झिड़यों और गालियों के सिवा क्या हाथ आता? यहाँ महीने में दस दिन भी लग जाते हैं तो खर्च निकल आता है। बम्बई के मज़े, सो घाते में! हाशिम भाई की मेहरबानी रही, कोई अच्छा रोल मिल गया और हमने अपने जौहर दिखाये तो देखना दिनों में हमारा नाम हिन्दुस्तान भर में गूंज उठेगा।

प्राण : एकिन मुझे तो एक्स्ट्ला का भी श्रोल नहीं मिश्रा।

रणजीत : इतनी जल्दी! (जोर के नशीला ठहाका लगाता है) इतने दिन में तो मियाँ स्टूडियो की शक्ल तक देखने को नहीं मिलती। आज दादर बार में आये हो, कुछ दिन यहाँ की परिक्रमा करोगे तो सब कुछ हो जायगा। अच्छे अच्छे एक्टर डायरेक्टर शाम को यहाँ आते हैं। हाशिम भाई की मेहरबानी रही तो अच्छे अच्छों से मुलाकात हो जायेगी (बिलियर्ड के कमरे में बैठे एक मोटे से आदमी की ओर इशारा करता है) वह देखो बिलियर्ड के कमरे जो में मोटा सा आदमी बैठा है, जानते हो कौन है?

(प्राण चुप रहता है)

— : वह है मनतोष!

प्राण : (एकदम उचक कर देखता है और जैसे उसकी आँखें वहीं चिपक जाती हैं) मनतोष!

रणजीत : हाँ वही—'दिलरुबा, 'प्यार की रेल' और 'पिया के देश' का डायरेक्टर। जूते चटखाता आया था यहाँ, मह नों हमारे साथ फ़ुटपाथों पर सोता रहा, लेकिन

किसमत का धनी है ! डायरेक्टर हो गया। अब तो आँख भी नहीं मिलाता।

(लड़खड़ाई सी आवाज़ से गाता है :)

अपनी तक़दीर से शिकवा है,
ग़म है अपनी तदबीर ही का।
यावर है मुक़द्दर जिसका उस
कम्बख्त से शिकवा कौन करे ?[१]

[बैरा ट्रे लाता है और तीनों के आगे खाद्य सामग्री की प्लेटें रख जाता है। बाहर के दरवाजे से सतीश और रवीन्द्र बातें करते आते हैं।]

रवीन्द्र : जाने का सवाल तो अब पैदा ही नहीं होता, सतीश भाई ! आई हैव बर्नट माई बोट्स[२] ।

[आकर स्टेज के किनारे दायीं ओर की खाली मेज पर बैठते हैं।]

— : या तो मैं सफल डायरेक्टर बनूंगा, शिवाजी पार्क में एक बढ़िया फ़्लैट लेकर मोटर में घूमूंगा और या...या...बम्बई में खत्म हो जाऊँगा.. (खोखली सी हँसी हँस कर) कहिए क्या पीयेंगे ? ह्विसकी पिलाने की तो मेरी सकत नहीं। बीयर पीयें तो मंगाऊँ।

सतीश : लेकिन रोबी, तुम इतनी जल्दी भूल गये। मैं न ह्विसकी पीता हूँ और न बियर। मैं तो नींबू का शरबत पीऊँगा।

---

१. जिसका भाग्य बली हो उससे कैसी शिकायत। अपनी ही तकदीर से शिकायत है, अपनी तदबीर की असफलता का दुख है। २. मैं तो लँगर तोड़ आया हूँ।

रवीन्द्र : नींबू का शरबत तो दादर बार में क्या मिलेगा। लैमोनेड या विमटो कहिए तो मंगाऊँ।

सतीश : एक खारी सोडा मंगाओ। सात दिन में और चाहे यहाँ कुछ नहीं सीखा पर सोडा पीना तो सीख गया हूं।

रवीन्द्र : (बैरा से) एक बीयर लाओ टैनेसी और एक गिलास नींबू का शरबत। बन जायगा?

बैरा : बन जायगा साब!

(चला जाता है।)

रवीन्द्र : (सतीश से) क्षमा कीजिएगा सतीश भाई, जब से बम्बई में आया हूं यह तीसरा चांस है मन बड़ा थका हुआ है। आज 'धर्मयुग' से पन्द्रह रुपये एक कहानी के मिल गये हैं। सोचा इसी धर्म के काम में लगायें।

(एक खोखली सी हँसी हँसता है।)

सतीश : (समवेदना भरे स्वर में) रवी तुम समझते हो, तुम ठीक रास्ते पर हो?

रवीन्द्र : (भाग्यवादी लहजे में) आइ हैव बर्नट माई बोट्स

सतीश : (उसकी नकल उतारते हुए) आइ हैव बर्न्ट माई बोट्स—याने अब कुछ नहीं हो सकता। भाई मेरे फाइनेलिटी[1] इस गतिशील जीवन में किसी चीज़ को प्राप्त नहीं! समझदार आदमी गलत मार्ग छोड़ देते हैं, रुद्ध तोड़ देते हैं और अपनी इच्छा-शक्ति के बल पर नये रास्ते बनाते बढ़े जाते हैं। फिर

---

१. Finalty = निश्चियात्मकता।

तुम्हारा तो रास्ता बना बनाया है। तुम्हें इस दलदल से निकल कर उस पर फिर चलना भर है।

रवीन्द्र : (अर्ध-गम्भीर अर्ध-व्यंग्य-भरे स्वर में धीमे से गाते हुए)

हो नियति इच्छा तुम्हारी
दलदलों में ज़िन्दगी की
मौन मैं धँसता चलूंगा !

सतीश : (हंसकर) जैसे इन पंक्तियों का कवि अपनी ही सृजी दलदल में धँसता चला गया। लेकिन यह भी एक कवि ही ने कहा है :

खुदी को कर बुलन्द इतना कि हर तक़दीर से पहले
खुदा बन्दे से खुद पूछे बता तेरी रज़ा[1] क्या है।

[रोबी उत्तर नहीं देता। बैरा बीयर और नींबू के शरबत का गिलास ले आता है। शरबत का गिलास सतीश के आगे रख देता है। और बीयर की बोतल खोल, जग में डालकर उसे रोबी के सामने रख देता है।]

रवीन्द्र : (जग उठाते हुए) Let us drink to the memory of Ravindraawould have been[2]

[हँसता है और जग को उठा कर मुँह से लगा लेता है। सतीश चुपचाप देखता है। उसका गिलास उसके हाथ ही में रहता है, मुंह से नहीं लगता]

सतीश : तुम अपनी सम्भावनाओं के प्रति व्यंग्य कर सकते हो। (एक घूंट भरता है) परन्तु रोबी तुम सचमुच

१. रज़ा = इच्छा। २. आओ हम रवीन्द्र की याद में पियें—जिसकी सम्भावनाएँ बड़ी थीं।

महान हो सकते थे—हो सकते हो—तुम्हारे कलम में, तुम्हारे सब साथियों से अधिक जोर था; तुम्हारी अभिव्यक्ति तीखी, पैनी और हृदय को भेदने वाली थी। हम तुम्हारे उज्ज्वल भविष्य के सपने देखते थे। तुम खुद सपने देखते थे...और... और तुम यहाँ आ धँसे इस दलदल में, जहाँ से यदि तुम न निकले तो प्रकाश जी ही की भाँति गरदन तक डूब जाओगे। लेकिन उतना डूब जाने पर भी तुम प्रकाश जी जैसे सफल हो पाओगे, इसमें संदेह है। तुम्हारी भाव-प्रवणता तुम्हें उस पथ पर कभी न बढ़ने देगी। प्रकाश जी ऐसी मोटी खाल तुम कहाँ से लाओगे?

(रोबी उत्तर नहीं देता। चुपचाप बीयर पीता है।)

— : शायद तुम समझते हो कि डायरेक्टरी लेखकी से उत्तम है। सस्ता यश और धन तो शायद आज के फ़िल्मी डायरेक्टर को प्राप्त हो जाय, किन्तु उसे लेखक का सृजन-सुख मयस्सर होगा, इसमें सन्देह है। क्योंकि आज का औसत हिन्दुस्तानी फिल्म डायरेक्टर सृजन के नाम पर जो देता है, उसे देखकर ग्लानि होती है। तुम्हारी ही तरह, कवि प्रकाश के (व्यंग्य से हँसता है) सफल उदाहरण को सामने रख कर मैं आया था, पर इन सात दिनों में उनके साथ रह कर मैंने जो देखा है, उससे प्रबल वितृष्णा होती है। लेखकी अपने धनाभाव के बावजूद इस डायरेक्टरी से हजार दर्जे अच्छी है। वे डायरेक्टर बन जायेंगे, तुम भी शायद कभी बन जाओ पर......

रवीन्द्र : (बीयर का जग रख कर आवेश से) पर सतीश तुम मेरे साथ अन्याय करते हो। मैं डायरेक्टर को—कम से कम आज के डायरेक्टर को—लेखक से ऊँचा नहीं समझता। पर मुझमें प्रतिभा थी भी कुछ ? मैं जान गया था कि मैं कभी फ़र्स्ट रेट लेखक नहीं बन सकता और सेकंड रेट लेखक बन कर, उम्र भर त्याग तपस्या और अभाव का जीवन बिता सकना मेरे लिए नितान्त असम्भव था।

सतीश : पहले तो यह कि अभाव अभाव में फ़र्क है और फिर यह तुम कैसे कह सकते हो कि डायरेक्टर बन कर तुम्हें कोई अभाव न रहेगा। देखो रोबी अपने कृत्य के लिए बहाने न ढूँढ़ो।

(शरबत का घूँट भरता है)

हाशिम : बैरा एक बड़ा और दो छोटे पैग लाओ !

प्राण : नहीं हाशिम भाई, बस। मेरा सिर इतने ही से चकरा रहा है।

हाशिम : यहाँ बैठने के लिए कुछ न कुछ शगल चाहिए। वो मनतोष साहब तो अभी जमे हुए हैं। वहाँ से हिलें तो मैं उनसे कुछ बातचीत करूँ। तब तक कुछ न कुछ तो चलता रहे। यह फ़ुटपाथ नहीं, बार है।

प्राण : तो आप मँगा लीजिए अपने लिए।

रणजीत : (कद्रे लड़खड़ाती आवाज में) तुम भी मँगा लो मेरे यार, न हो, हमीं ले लेंगे।

हाशिम : (बैरा से, जो रुका हुआ है) जाओ बेयरा।

(बेरा चला जाता है।)

सतीश : (शरबत का घूँट पीकर) तुम सेकिंड रेट नहीं थे रोबी। फर्स्ट रेट लेखक की पूरी सम्भावनाएँ तुम्हारे अन्दर थीं। मुझे स्वयं तुमसे ईर्षा थी। और फिर दुनिया के सारे महान लेखक माँ की कोख ही से तो महान पैदा नहीं हुए। अधिकांश पहले सेकिंड रेट थे—टालस्टाय, गोरकी, चैखव, शा और प्रेमचन्द—सब ! निरन्तर अध्यवसाय और लग्न से उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति को जिला दी और महान कहलाये। जन्मजात प्रतिभा तो प्रायः अपने बाहुल्य के कारण संतुलन खो बैठती है। अपने बड़प्पन से आक्रान्त होकर भटक जाती है। किन्तु वे 'आरम्भ के सेकिंड रेट' अपनी जिज्ञासा और अध्यवसाय से उन प्रतिभावानों से कहीं आगे निकल जाते हैं। तुम मेहनत से भाग गये रोबी और कुछ नहीं !

रवीन्द्र : लेकिन सतीश केवल यही बात न थी। तुमसे मेरा क्या छिपा है। मेरे घर की आर्थिक दशा तुम जानते हो। तीन बहनों और दो भाइयों का बोझ अकेले मेरे सिर है। मेरे बिना उनका कौन है, फिल्म के सिवा मेरे सामने दूसरा कौन मार्ग था।

सतीश : तुम समझते हो कि यहाँ सौ सवा सौ की नौकरी करके, आधे पेट भूखे रह कर और अपनी असफलता, थकान और कुंठा को बियर की कड़ुवाहट में डुबा-कर तुम उनकी बड़ी सेवा कर रहे हो ! तुम्हें वहाँ समाचार पत्र में डेढ़ सौ की नौकरी मिलती थी, पचास सौ रिडियो से आ जाते। हम तुम इकट्ठे रह लेते। सौ रुपये तुम निश्चित रूप से घर भेज सकते

थे। साहित्य-सृजन करते सो अलग। अब इतने महीने से तुमने क्या घर भेजा है? यों शहीद न बनो रोबी। भाई बहिनों का ख्याल नहीं, सस्ते धन और यश की लालसा तुम्हारे सौन्दर्य-प्रेमी-मन को बम्बई खींच लायी। तुम भी शायद प्रकाश जी के पद-चिन्हों पर चलना चाहते हो। लेकिन भाई उन्होंने धन चाहे काफी संचित कर लिया है, मोटे भी चाहे वे हो गये हैं, पर उनके काव्य की धार एकदम कुन्द हो गयी है। फिर रोबी तुम सफल लेखक बन सकते थे, सफल डायरेक्टर बन सकोगे, इसमें मुझे सन्देह है। उसके लिए तुम्हें अपनी खाल मोटी करनी होगी और उस प्रतिभा को जो सत्य-शिव और सुन्दर की सृष्टि करती है, प्रकाश जी की भाँति असत्य, अशिव और असुन्दर की सृष्टि में लगाना होगा।

[तभी दरवाजे में कवि प्रकाश नमूदार होते हैं। रवीन्द्र से उनकी निगाहें चार होती हैं]

प्रकाश : हैलो रोबी (सतीश को देखकर) अच्छा तुम भी यहाँ हो !

[छिछलती सी निगाह पहले बाहर फिर अन्दर के कमरे में डालते हैं और उनकी दृष्टि डायरेक्टर मनतोष को ढूंढ़ लेती है।]

— : मैं आया अभी।

[दूसरे कमरे की ओर मुड़ जाते हैं। बाहर के दरवाज़े से रशीद भाई और शहबाज बातें करते हुए प्रवेश करते हैं।]

रशीद भाई : तुम मुझे मिल न जाते तो मैं चला जाता शहबाज़। खुदा कसम दो बार पहले भी यहाँ हो गया हूँ। दो बार तुम्हारे घर हो आया हूँ। अब यही सोचा था कि एक बार दरवाज़े में झाँक कर चला जाऊँगा कि सीढ़ियों पर तुम्हें देखा।

शहबाज़ : (हँसकर) जेब कुछ खाली है आजकल रशीद भाई, नहीं दादर बार से हमारी दोस्ती ऐसी कच्ची नहीं जो इतनी जल्दी टूट जाय......

[रशीद भाई एक खोखला ठहाका लगाते हैं, क्षण भर खड़े हाल का जाइज़ा लेते हैं। फिर स्टेज के इस किनारे, मध्य की खाली मेज़ पर आकर बैठते हैं। भीड़ अभी उतनी नहीं, इसलिए उनके बैठते ही ब्वाय उनके पास आकर अदब से ज़रा सा झुक कर खड़ा हो जाता है।]

शहबाज़ : स्काच के दो बड़े पेग लाओ ब्वाय —गिलास में— और दो बोतल सोडा और...(मेज़ पर पड़ी मीनू पर एक दृष्टि डालते हुए) एक प्लेट शामी और एक मटन चाप।

[ब्वाय सिर झुका कर चलता है कि शहबाज चिल्लाता है]

—: सोडा देखो राजर्स का लाना। और कबाब बिल्कुल ताज़े हों (रशीद भाई की ओर मुड़ कर) तो कहिए रशीद भाई कैसे आये थे ? कोई खबर है या योंही गपशप के लिए।

रशीद भाई : (जिनके चेहरे पर उल्लास छिपाये नहीं छिपता) नहीं कोई ऐसी बात तो नहीं, योंही सोचा कि आज शाम शहबाज के साथ ही बसर की जाय। (फिर

निमिष भर चुप रह कर, मेज़ पर आगे को झुकते हुए, धीमे स्वर में) यों एक बात भी है, लेकिन किसी से कहना नहीं।

शहबाज़ : (चौकन्ना होकर) नहीं नहीं आपने मुझे क्या ढोल समझ लिया है कि इधर हाथ पड़ा और उधर शहर भर को गुँजा दिया। यह सीना तो रशीद भाई तहखाना है तहखाना—न जाने कौन कौन से राज़ यहाँ दबे पड़े हैं।

(हाशिम भी चौकन्ना होकर सुनता है।)

रशीद भाई : बात यह है कि डायरेक्टर कादिर की अगली फिल्म के डायलाग शायद मैं लिखूं।

शहबाज़ : (कुर्सी से लगभग आधा उठता है) सच ! कैसे फाँस लिया डायरेक्टर कादिर को आपने ?

[तभी दूसरे कमरे से डायरेक्टर मनतोष कवि प्रकाश से बातें करते आते हैं]

प्रकाश : त्रण मणि के गुण न पूछिए। अंग्रजी में इसे 'एम्बर' और फ़ारसी में कहरबा कहते हैं। जिसको यह सुखाये उसके निकट इसका मूल्य हीरे मोती से कम नहीं। सूर्य जिसके जन्म-लग्न में हो, वह यदि त्रण मणि पहने......

[तभी डायरेक्टर मनतोष की दृष्टि रशीद भाई पर पड़ती है और वे बाहर के दरवाज़े की ओर जाने के बदले उधर को मुड़ते हैं, हाशिम उनसे मिलने के लिए पहले चल देता है।]

मनतोष : (प्रकाश जी के वाक्य को बीच ही में काटकर, रशीद भाई को आवाज देते हुए) सुना वे रशदे, क्या हाल चाल हैं तेरे ?

रशीद भाई : (अपनी जगह से उठकर) अरे मनतोष भाई...

(उनकी ओर बढ़ते हैं ।)

हाशिम : (जो उनसे पहले पहुँचता है, बड़े अदब से झुक कर) मनतोष साहब आदाब अर्ज़ !

मनतोष : सुनाओ भई हाशिम

[पर उसकी सुनने को रुकते नहीं, बढ़कर रशीद भाई के कंधे पर हाथ मारते हैं ।

कवि प्रकाश और हाशिम अदब से पीछे खड़े रहते हैं ।

शहबाज़ उठकर सिर के इशारे से प्रकाश जी को अदाब कहता है और रशीद भाई के पीछे जा खड़ा होता है । नीचे के सम्वादों में वह रशीद भाई से कई बार इशारे करता है कि उसका भी मनतोष जी से परिचय करा दिया जाय, पर या तो रशीद भाई उसके इशारे को नहीं समझते, या समझ कर भी उधर ध्यान नहीं देते और बड़े तपाक से डायरेक्टर मनतोष का हाथ अपने दोनों हाथों में लेकर दबाते हैं ।]

रशीद भाई : कहिए मनतोष भाई किधर ? अभी डेसाई के ही साथ हैं या......सुना था कि......

मनतोष : उस साले चोट्टे से मेरी कै दिन बसर होती । मैंने तो पूना की 'शालामार' से कान्ट्रेक्ट कर लिया है । दो हज़ार रुपये महीने पर वहाँ जा रहा हूँ ।

रशीद भाई : (जिन्हें विश्वास नहीं आया) यहाँ तो आपको शायद...

मनतोष : आठ सौ मिलते थे, पर यहाँ मैं सिर्फ़ डायरेक्टर था वहाँ प्रोड्यूसर भी मैं ही रहूँगा ।

प्राण : (रणजीत से) यह कौन है ?

रणजीत : (तनिक लड़खड़ाती आवाज में) तुम्हें अभी तो बताया था मैंने—डायरेक्टर मनतोष हैं।

प्राण : यह हैं मनतोष। मैं इनके साथ बैठे दूसले आदमी समझा था। बंगाई हैं शायद।

रणजीत : अरे नहीं साला पंजाबी है। असली नाम दीनानाथ है। यहाँ आते ही मनतोष हो गया (धीमें भेद भरे स्वर में) साला एक नम्बर का चोर है। इसके दोस्त ने इसे दिल्ली से बुलाया था। वहाँ रेडियो में कहीं झख मार रहा था। यहाँ पहुँचते ही इसने पर-पुरज़े निकालने शुरू किये। दोस्तों में लगने लगी। वह इसे निकालना चाहता था। इसने कुछ ऐसा पैंतरा बदला कि वह निकल गया और यह वहीं डायरेक्टर बन गया। लेकिन पैंतरे देखना हाशिम भाई के। कैसे चारों खाने चित्त गिराता है इन सबको। नंबर वन पैंतरेबाज़ है हाशिम भाई।

प्राण : (भोलेपन से) पैंतलेबाज़ या पत्तेबाज़ ?

रणजीत : क्या ....?

प्राण : कल जब हम उधल सँडहर्स्ट रोड के नाके पल ईलानी के लेस्तोलाँ में चाय पी लहे थे औल आप दोनों उठ कल गये थे तो हमाले साथ की टेबल पल बैठे एक एक आदमी ने हाशिम भाई की ओल इशला करके कहा था, कि जबलदस्त पत्तेबाज़ है हाशिम भाई।

(रणजीत चुप है। सोच रहा है कि क्या उत्तर दे)

प्राण : (उसी भोले पन से) क्यों लणजीत भाई, पैंतलेबाज़ी औल पत्तेबाज़ी में कोई फ़ल्क है ?

रणजीत : (सहसा हँसते हुए) कुछ नहीं कुछ नहीं। पत्तेबाज़ी भी पैंतरेबाज़ी ही है। यह सारी इंडस्ट्री साली पत्ते-बाज़ी पर कायम है। 'दादर बार' से लेकर सी० सी० आई०[1] और रेस कोर्स में पैंतरेबाज़ी या (हँसकर) पत्तेबाज़ी ही तो चलती है।

प्राण : क्या सभी बड़े लोग दादर बार में आते हैं।

रणजीत : नहीं, बड़े लोग सी० सी० आई० और दूसरे बड़े क्लबों की बारों में जाते हैं। उनसे भी बड़े रेस कोर्स पर मिलते हैं। पर है सभी जगह पैंतरेबाज़ी या (हँसकर) पत्तेबाजी। बिना यह गुण जाने इस इंडस्ट्री में जमना मुश्किल है। तुम हमारे साथ रहोगे तो दोनों गुणों में पूरे ताक हो जाओगे।

[सहसा मनतोष, जो रशीद भाई से बातें कर रहा था, ज़ोर से ठहाका मारकर रशीद भाई के कंधे पर बे-तकल्लुफी से हाथ जमा देता है।]

मनतोष : तुम भी रशदे, वैसे के वैसे चुगद रहे। अच्छा तो चले।

(हाथ मिलाता है।)

रशीद भाई : (साथ साथ चलते हुए) कोई काम मेरे लायक हो मनतोष भाई तो रात के बारह बजे भी याद फरमा-इएगा तो पहुँच जाऊंगा......कहानी तो आपने......

मनतोष : कहानी तो तय हो चुकी। मेरी ही कहानी है। 'कमरा नम्बर आठ', स्क्रीन प्ले और सिनारियो भी मैंने ही तैयार किया है और डायलाग भी मैं ही लिख

---

१ सी० सी० आई० = क्रिकेट क्लब आफ़ इंडिया = बम्बई का सुप्रसिद्ध क्लब

रहा हूँ। गीत दो प्रदीप ने लिखे हैं, दो नखशब ने और दो प्रकाश जी लिख रहे हैं। तुम चाहो तो एक रोल दे दूँ तुम्हें, आखिर तुम्हारी यह मोटाई किस दिन काम आयगी। कल मिलना मुझे दस बजे श्री साऊंड में।

[रशीद भाई के कंधे को थपथपा कर चल देते हैं।]

शाहबाज़ : (प्रकाश से जो मनतोष के पीछे चलते हैं।) हम गरीबों का खयाल रखिएगा कवि महाराज !

प्रकाश : क्यों नहीं, क्यों नहीं। हम खादिम किसके हैं ? कल श्री साऊंड में आओ न। वहीं भेंट होगी।

(डायरेक्टर मनतोष के पीछे चलते हैं।)

सतीश : मेरा ख्याल है प्रकाश जी तो अब यहाँ नहीं आयेंगे। मैं ज़रा वर्मा साहब से मिलना चाहता था, पूछ लूँ— वे जा रहे हैं वहाँ कि नहीं ?

[उठकर जल्दी जल्दी चला जाता है। रशीद भाई मुड़ते हैं तो शहबाज़ से टकराते टकराते बचते हैं।]

शहबाज़ : आपने मेरा तआरुफ़[1] ही करा दिया होता रशीद भाई।

रशीद भाई : मैंने ध्यान नहीं दिया। तुमने इशारा कर दिया होता।

शहबाज़ : इशारे तो मैंने काफ़ी किये, पर आप बातों में मशगूल

---

१ तआरुफ़=परिचय।

थे। खैर कल आप श्री साऊंड जा रहे हैं, ज़रा मुझे भी ले चलिएगा।

रशीद भाई : क्या जाने जरूरत ही न रहे वहाँ जाने की ? कल सुबह तो डायरेक्टर कादिर से मिलने जाना है।

(आकर दोनों अपनी जगह बैठ जाते हैं।)

रवीन्द्र : बेयरा, एक बोतल बीयर और लाओ।

शहबाज़ : क्या पहले से जान पहचान थी उनसे ? आपने तो कभी ज़िक्र नहीं किया ?

रशीद भाई : (बड़े विनम्र अभिमान से) यह सब मेरी फिल्म 'जंगल का दिलावर' के करिश्मे हैं। तुम्हें तो मालूम है कि शान्ताराम ने उस फिल्म को देखकर कितनी तारीफ की थी।(रंग बाँधते हुए) लगता है कि सी० सी० आई० में कहीं उन्होंने डायरेक्टर कादिर से मेरी तारीफ़ की। वहाँ हमारे डायरेक्टर वाचा भी थे। उन्होंने कहा कि रशीद भाइ के जौहर तो डायलाग में खुलते हैं। लफ्ज़ होते हैं कि नगीने। बस, आज सुबह शमीम के फ़िल्म के 'महूरत' में उनसे भेंट हो गयी। शमीम ही उन्हें 'संगम' में लायी है। मुझसे बहुत अच्छी तरह मिले। मैं ने भी उन्हें शाम को चाय पीने की दावत दी। तब उन्होंने ख्वाहिश ज़ाहिर की कि यदि मुझे एतराज़ न हो तो उनकी अगली फिल्म के डायलाग मैं लिख दूँ।

शहबाज़ : (किंचित् हँस कर) भला इसमें आपको क्या एतराज़ हो सकता था। नेकी और पूछ पूछ।

रशीद भाई : (गम्भीर होकर) नहीं, यह बात तो नहीं। डायरेक्टर वाचा अपनी अगली फ़िल्म के लिए मुझ पर बड़ा ज़ोर दे रहे हैं कि मैं ही उनकी कहानी सीनारियो और डायलाग लिखूँ। लेकिन भाई, मैं स्टंट फ़िल्मों से ऊब गया हूँ और मेरा इरादा अब एक सोशल फ़िल्म बनाने का है। इसलिए मैंने डायरेक्टर कादिर की आफ़र लगभग मान ली है। अभी तो शायद मैं उनकी फ़िल्म के डायलाग ही लिखूँ, लेकिन (आवाज़ और भी धीमी करके) मैं उनकी अगली फ़िल्म की कहानी भी लिखूँगा, यह बात भी तुम पक्की समझो। अभी डायरेक्टर कादिर प्रोड्यूसर वाडी लाल के यहां गये हैं। वहीं सब तय होगा। तुम अभी चन्द दिन यह बात अपने तक ही रक्खो।

[ब्वाय खाने-पीने का सामान लाकर मेज़ पर रखता है और सोडे को बोतल खोलकर देता है। दोनों दोस्त अपनी अपनी जरूरत के मुताबिक सोडा ढाल कर पीते हैं।]

शहबाज़ : मुझे पूरा यकीन है रशीद भाई कि आपका यह काम पक्का हो जायगा, हमारी सिर्फ़ इतनी अर्ज़ है कि हमें न भूल जाइएगा।

रशीद भाई : यह बात तुम तय समझो कि एक बार मेरे पाँव वहाँ जमे कि तुम्हारे भी जमे। अव्वल तो मैं इसी पिक्चर में तुम्हें ले लेने की कोशिश करूँगा। लेकिन हो सकता है उन्होंने कॉस्ट चुन रक्खी हो। ऐसा

हुआ तो अगली कहानी में मैं तुम्हें अव्वल तो हीरो, नहीं तो साइड हीरो जरूर बनाऊँगा।

शहबाज़ : आप ही के भरोसे यहाँ पड़े हुए हैं रशीद भाई। मैं तो बम्बई छोड़ कर कलकत्ता चला गया होता अगर आपकी मदद न होती। एक बार मौका दीजिए। ऐसा काम करके दिखाऊँ कि ये अशोक कुमार और पृथ्वीराज मुंह देखते रह जायँ।

रशीद भाई : (चुस्की लेकर) और क्या! आखिर उनमें कौन सा सुरखाब का पर लगा हुआ है। मैं तो शहबाज़, जो दूसरी कहानी लिख रहा हूँ, वह तुम्हें ही ध्यान में रख कर लिख रहा हूँ!

शहबाज़ : ब्वाय।

(ब्वाय आता है।)

— : अरे भाई चटनी लाओ।

[ब्वाय एक दूसरे टेबल पर पड़ी चटनी की बोतल उठाकर उनकी मेज़ पर रख देता है।]

— : (चटनी कबाब पर डालते हुए) एक बार आप मौका दीजिए रशीद भाई, फिर देखिए कैसा काम दिखाता हूँ। ये फिल्म वाले साले एकदम जाहिल हैं। अगर कोई एक्टर एक बार, बेकारी के हाथों मजबूर होकर, स्टंट फिल्म में काम करता है तो फिर उसे सीरियस रोल (Serious Role) देते ही नहीं। इन कम्बख्तों को कौन समझाये कि अच्छा एक्टर दस तरह का रोल कर सकता है (अचानक उठकर खड़ा हो जाता है और बाँह को दोहरा कर उसकी मछली

दिखता है ।) यह देखिए यह पट्ठे, यह छाती, यह स्ट्रीम-लाइण्ड जिस्म । पृथ्वीराज लाख लम्बा-तगड़ा सही, लेकिन क्या उसका जिस्म ऐसा गठा, तना और लचकीला है ? काम करता हुआ वह बिल्कुल पत्थर का बुत मालूम होता है। और अशोक कुमार (हँस कर) जनखा है । मुसीबत यह है कि जो अच्छे आर्टिस्ट हैं, उनको इस साली फिल्मी दुनिया में मौका ही नहीं मिलता । एक बार सोशल कहानी में दीजिए हीरो का रोल, फिर देखिए छा जाता हूँ इंडस्ट्री पर कि नहीं ।

रवीन्द्र : (अपने आप तनिक मस्त स्वर में) हर फिल्मी एक्टर साला अपने आपको पृथ्वीराज और अशोक कुमार से बड़ा समझता है ।

(जग को एक ही घूंट में खाली कर देता है ।)

— : बेयरा

(बैरा उसके पास आता है ।)

— : एक बोतल बीयर और लाओ ।

(सतीश वापस आता है ।)

सतीश : प्रकाश जी तो चले गये । उनसे बात करने का मौका नहीं मिला ।

रवीन्द्र : यह मौका ही नहीं था उनसे बात करने का । अभी तुमने सुना था कि उनके दो गीत मनतोष ले रहे हैं । जब फिल्म रीलीज़ होगी तो देखना कि सबका पत्ता कट गया और गीत सभी प्रकाश जी के

हैं। तुम इतने दिन से हो उनके साथ हो, समझे नहीं उन्हें ?

सतीश : कितना बदल गये हैं प्रकाश जी। मुझे मौका नहीं मिला, पर एक बार मैं उनसे खुलकर बात करूँगा जरूर।

रवीन्द्र : कोई लाभ नहीं। प्रयाग के प्रकाश और बम्बई के प्रकाश में बड़ा अन्तर है—उतना ही, जितना संगम और समुद्र के पानी में।

(बैरा बीयर की बोतल लाकर रखता है।)

सतीश : यह क्या। उठो अब चलें।

रवीन्द्र : (हल्की सी मस्ती में)—

मर रहे हैं जो उनको जीने दे
रोकता किस लिए है, पीने दे !

—: तुम नीबू के शरबत का चाहे एक गिलास मँगालो। बैठो।

(हँसता है। सतीश अन्यमनस्क बैठ जाता है।)

रशीद भाई : (लम्बा घूंट भर कर और लम्बी साँस, लेकर) इक ज़रा सब्र कि फ़रियाद के दिन थोड़े हैं। अब हमारा जद्दो-जहद,[1] का ज़माना खत्म हुआ। और भाई बात यह है कि बिना जद्दो-जहद के कुछ मिलता भी तो नहीं। अशोक की बात तो मैं नहीं कहता, लेकिन पृथ्वीराज को कम मेहनत नहीं करनी पड़ी। बम्बई से कलकत्ते तक न जाने उसने कितने स्टूडियों की खाक छानी है। और फिर दोस्त, फिल्मी दुनिया में सिर्फ़ क़ाबलियत को कोई नहीं पूछता। यही बात

१ जद्दो-जहद = संघर्ष

अभी कुछ घंटे पहले मैंने तुम्हारी भाभी से कही थी। क़ाबलियत के साथ चतुराई और चाबुकदस्ती की जरूरत है। क़ाबलियत की बात हो तो मुझ में क्या कम क़ाबलियत है? फिल्म का कौन सा ऐसा अंग है जिस पर मुझे इख़्तयार नहीं? कहानी क्या, स्क्रीन प्ले क्या, सिनारियो क्या, डायलाग क्या, गीत क्या, ऐक्टिंग क्या...अरे भाई कैमरा और साउंड-रिकर्डिंग तक में मैं बीसियों को मात दे दूँ। लेकिन बस, अब दिन फिरने वाले हैं। एक दो फिल्म कादिर साहब के साथ चल गये तो मैं तुम्हें अगले साल तक डायरेक्टर या प्रोड्यूसर बना दिखायी दूंगा।

शहबाज़ : (अपना गिलास भी खत्म करके) ब्वाय...ब्वाय... ब्वाय...

ब्वाय : (आते हुए) जी साब।

शहबाज़ : एक एक छोटा पेग और लाओ।

रशीद भाई : अरे भाई रहने दो।

शहबाज़ : अरे रशीद भाई, आज कुछ जेब खाली है। नहीं ब्लैक-एण्ड-वाइट की पूरा बोतल यहाँ होती और ऐसी खुशी में दिल खोल कर पीते।

रशीद भाई : कोई बात नहीं। अगले हफ़्ते मिलेंगे। तब तक यह बात भी पक्की हो जायेगी और मैं कोशिश करूँगा कि इसी कहानी में तुम्हें हीरो का या साइड हीरो का रोल दिलाऊँ।

शहबाज़ : अगले हफ़्ते तक मुझे पगार भी मिल जायगी।

स्काच का मैं इन्तज़ाम कर रखूंगा। बस सात दिन बाद यहीं इसी समय आपको मेरी दावत।

[ब्वाय पेग ले आता है। दोनों सोडा डाल कर मज़े मज़े पीते हैं, जब पर्दा गिरता है।]

[कुछ क्षण बाद पर्दा फिर उठता है। सात दिन बीत चुके हैं। समय वही है। 'दादर बार' की गहमा गहमी भी वही है। प्राण और रणजीत तथा रवीन्द्र और सतीश की जगह दूसरे बैठे हैं। बीच वाली मेज़ पर बोतल रखे केवल शहबाज़ बैठा रशीद भाई की प्रतीक्षा कर रहा है। बार बार गर्दन उठाकर दरवाज़े की ओर देखता है।]

ब्वाय : (शहबाज़ के पास से गुज़रते हुए) अभी आये नहीं आपके दोस्त ?

शहबाज़ : आये नहीं, एक घंटा हो गया मुझे बैठे। गला सूख रहा है। न हो तुम एक छोटा पैग ले आओ स्काच का।

ब्वाय : बोतल खोल दूं।

शहबाज़ : नहीं भाई, यह तो रशीद भाई के लिए है। खुली तो गयी।

[परे मेज़ पर बैठा एक व्यक्ति जो कोई छोटा मोटा एक्टर लगता है, उठता है और लड़खड़ाता हुआ शहबाज़ की मेज़ पर आता है]

लड़खड़ानेवाला : मैं कहता हूँ यार, आज हमारी ही दावत कर दो!

शहबाज़ : शोर न मचाओ इदरीस।

इदरीस : अरे कुछ मुँह का ज़ायका ही बदले। खुदा कसम तबाह हो गया है जिन (jin) पीते पीते। साली कब यह लड़ाई खत्म हो और खुले आम सस्तो पीने को मिले। (फिर ज़रा गम्भीर होने की कोशिश करके) देख शहबाज़, रशीद भाई तो आयेंगे नहीं और बोतल पड़ी तुझे बद-दुआएं देगी। कह दे बैरे से कि खोल दे काग कि खेल लें फाग ! (फिर गम्भीर होने की कोशिश करके) खुदा कसम, डारेयक्टर डेसाई के यहाँ तिकड़म भिड़ाया है। लड़ गया तो नहर बहा देंगे स्काच की, डुबा देंगे स्काच में तुम्हें प्यारे।

[बैठने को होता है कि रशीद भाई चिन्ता-ग्रस्त आते दिखायी देते हैं, मुँह उनका लटका हुआ है और आकृति पर खीज के चिन्ह हैं। शहबाज उनसे मिलने उठता है। पर वे बड़ी अन्यमनस्कता के साथ उससे हाथ मिलाते हुए, बिना किसी दूसरी ओर देखे, रेत के बोरे की तरह कुर्सी में धंस जाते हैं। स्काच की नहर बहाने वाला इदरीस अपनी जगह चला जाता है। और बैठते ही चिल्लाता है।

— : ब्वाय एक छोटा जिन लाओ !

शहबाज़ : (सहसा व्यस्त होकर) ब्वाय ब्वाय !

[ब्वाय छोटा पैग लेने जा रहा था कि लौट आता है।]

— : देखो रशीद भाई आ गये हैं, यह पैग रहने दो। भाग कर एक प्लेट शामी और एक तली मछली ले आओ (चुटकी बजाता है।) बस जैसे यहीं खड़े हो !

(ख्वाय तेज़ी से जाता है।)

शहबाज़ : (उसके पीछे चिल्लाते हुए) और देखो सलाद और चटनी लाना न भूलना।

रशीद भाई : (जैसे रेत के बोरे में कहीं बहुत नीचे से आवाज़ आती है।) अरे हटाओ यार! मुझे ज़रा भी ख्वाहिश नहीं।

शहबाज़ : (जो पहली बार रशीद भाई की तरफ़ ध्यान से देखता है, किंचित् चिन्ता भरे स्वर में) बात क्या है रशीद भाई?

[रशीद भाई कोई उत्तर नहीं देते...रेत का बोरा जहाँ पड़ा है वहीं पड़ा है।]

शहबाज़ : (हल्की सी खोखली हँसी के साथ) मैं तो ना-उम्मीद ही हो चुका था रशीद भाई। डेढ़ घंटा हो गया मुझे आपका इन्तज़ार करते हुए...मैं तो समझा कि वादा ही भूल गये...भई आप बड़े लोगों का...

[बोरे में हल्की सी जुम्बिश होती है, सारे शरीर में रशीद भाई का केवल सिर हिलता है।]

रशीद भाई : (धीमे से स्वर में) नहीं, यह बात नहीं।

शहबाज़ : (एकदम कुर्सी पर बैठकर, मेज़ पर झुकते हुए चिंतातुर स्वर में) तो क्या...तो क्या......डायरेक्टर कादिर से......

रशीद भाई : (सिर को बिना अधिक हिलाये लम्बी सांस खींच कर वैसे ही मरे मरे स्वर मे) नहीं यह बात नहीं। काम तो मैं डायरेक्टर कादिर की फ़िल्म में ही कर रहा

हूँ और तुम्हारे लिए रोल भी मैंने फ़िट कर दिया है।

शहबाज़ : (आश्वस्त हो जाता है, लेकिन रशीद भाई क्योंकि चिन्तित हैं इसलिए स्वर में चिन्ता बनाये रखता है।) फिर यह चेहरा क्यों मुरझाया हुआ है ? क्या घर से तबीयत कुछ...

रशीद भाई : (बिल्कुल वैसे ही, तनिक भी हिले बिना) नहीं वहाँ सब ख़ैरियत है।

शहबाज़ : (अब चिन्तित बने रहने का कोई कारण न देखते हुए, दोनों बाहों से हवा में दायरे बनाते और बड़ी मस्ती से कुर्सी पर पीछे को झूलते हुए) तो फिर यह मातमी सूरत क्या बना रखी है आपने। देखिए शीशे में परी इन्तज़ार कर रही है आपका।

[ब्वाय ट्रे में सोडा सलाद और चटनी लाता है और बोतल खोलता है। फिर दूसरी चीज़ें लाने जाता है। शहबाज़ दो गिलासों में मदिरा ढालता है।]

रशीद भाई : (उसे रोकते हुए) नहीं भई आज मन नहीं। मैं तो आता भी नहीं, पर तुमसे वादा किया था।

शहबाज़ : (रुक कर, बोतल मेज़ पर रखते हुए) आख़िर हुआ क्या?

[रेत का बोरा है कि रेत का बोरा, उसमें नाम-मात्र को भी जुम्बिश नहीं।]

शहबाज़ : (प्रकट है कि उसकी समझ में कुछ नहीं आया, पैंतरा बदल कर) आपकी इतने दिनों की हसरत पूरी हो गयी और आप हैं कि......

[रेत का बोरा एकदम गैस भरा गुब्बारा बनकर फट पड़ता है ।]

रशीद भाई : (एकदम उठकर) वही हसरत साली चक्की का पाट बनकर गले में पड़ गयी है।

शहबाज़ : क्या मतलब है आपका ?

रशीद भाई : अब मैं तुम्हें क्या बताऊँ, तुम जानते हो, मेरे पास दो कमरे का फ़्लैट है, एक छोटी सी बालकनी है और बस। कादिर साहब का बंगला तो शमीम ने हथिया लिया और अब वे मेरा फ़्लैट हथियाने की फ़िक्र में हैं ।

शहबाज़ : पर वह बंगला तो उन्हीं का था, उन्होंने किराये पर ले रखा था। शमीम तो वहाँ कुछ दिनों के लिए थी। शमीम के भाई तो खुद बंगला ढूंढ़ रहे थे।

रशीद भाई : (बेज़ारी से) हाँ ढूंढ़ रहे थे। वह क्या निकलने को वहाँ गयी थी। कादिर साहब ही उसे कैसे निकाल सकते हैं। 'संगम फ़िल्म्ज़' के बॉस (Boss) पर जानते हो, कैसा जादू डाल रखा है उसने ? यह जो पंचगनी से उतरते ही 'संगम फ़िल्म्ज़' से उनका कान्ट्रेक्ट हो गया, वह कुछ योंही नहीं। शमीम ही का हाथ है उसमें। कादिर भाई उसका अहसान मानते हैं, पर इसे क्या करें कि वह अहसान साँप के मुंह की छछून्दर बन गया है ! शमीम और उसके तुफ़ैलियों ने वह धमा चाकड़ी मचायी उनके वहाँ कि बेचारे कादिर साहब परेशान हो गये। मुझसे उन्होंने अपनी मुसीबत का ज़िक्र किया तो मेरे मुंह से निकल

गया, योंही तकल्लुफ़न[1] कि आपको सुकून[2] मिले तो मेरे यहाँ चले आइए। उस दिन तुम्हारे पास से गया तो देखा कि बेगम कादिर, पंख फुलाये अंडों के लिए जगह बनाने वाली मुर्गी की तरह, मेरे घर पर कब्ज़ा जमाये हैं।

शहबाज़ : (सिर्फ़ एक्टर हैं न, लेखक होता तो बात का मर्म समझता) तो इसमें बुरी बात क्या हुई, कादिर साहब के साथ रहने में तो बीस फायदे होंगे आपको।

रशीद भाई : (लगभग झल्लाए हुए स्वर में) बीस फ़ायदे तो होंगे, पर रह सकें तब न।

शहबाज़ : आखिर क्यों?

रशीद भाई : अरे भाई दो कमरों में बड़ा वो ले लेते और छोटा मेरे पास रहने देते तो—बाथ रूम दो हैं ही—काम चल जाता। लेकिन बेगम कादिर ने अंगुली पकड़ते पहुँचा पकड़ लिया।

[शहबाज केवल ज़रा सा हँसता है, वह हँसी रशीद भाई की तकलीफ़ के लिए भी हो सकती है और तकलीफ़ पर भी हो सकती है।

ब्वाय खाद्य सामग्री रख जाता है।]

रशीद भाई : (प्लेटों की ओर देखे बिना अपनी चिन्ता में) पहले ही दिन की बात है। दिन की क्या रात की कहो, क्योंकि मैं तुम्हारे पास से काफ़ी देर में गया था। बड़ा कमरा तो उन मियाँ बीवी ने सम्हाल लिया। छोटे कमरे में मैं अपनी बीवी के साथ लेटा था कि किसी

---

१ तकल्लुफ़न = औपचारिक रूप से। २ सुकून = शान्ति

बात पर मुझे जोर से हँसी आ गयी। झट दूसरे कमरे के दरवाजे पर टिक टिक हुई। उचक कर बेगम रशीद अपने पलंग पर जा बैठीं। मैंने कहा—आजाइए। मुंह पर उँगली रक्खे, पंजों के बल चलती, बेगम कादिर अन्दर आयीं और बोलीं—'खुदा के लिए धीरे हँसिए। बड़ी मुश्किल से सिर में तेल मल कर मैंने सुलाया है कादिर साहब को—वो जैसे आयीं थी वैसे ही पंजों के बल चली गयीं और हमारे सीने पर मूंग दल गयीं। उसके बाद कसम ले लो जो बेगम रशीद इन सात दिनों में मेरी चारपाई के नज़दीक भी फटकी हों।

[शहबाज की मन्द बुद्धि में धीरे धीरे स्थिति की हास्यास्पदता उजागर हो जाती है। वह ज़ोर से ठहाका मारता है।]

रशीद भाई : और दूसरे दिन उन्होंने बड़ी बेतकल्लुफ़ी से मेरे कमरे से एक चारपाई उठवाकर बालकनी में डलवा दी और वहाँ कादिर साहब की मेज़ लगवा दी। कहने लगीं (नकल उतारते हुए) 'काम के लिए सोने का कमरा मुनासिब नहीं। रात को फिर चारपाई यहीं कर लेंगे। मेज़ मैंने यहाँ डलवा दी है। आप दोनों यहाँ मिल कर काम करें'......लेकिन कसमे ले लो जो वहाँ चन्द मिनटों से ज्यादा बैठने की खुशी मुझे नसीब हुई हो। कादिर साहब ठहरे डायरेक्टर और वह भी मशहूर। सारा दिन कोई न कोई प्रोड्यूसर, डायरेक्टर, ऐक्टर और जाने कौन कौन 'टर' उनसे मिलने के लिए आते और बेगम रशीद

वाली चारपाई से कौच का काम लेते रहे। हारकर हम उसे भी बालकनी में उठा लाये और बालकनी की कुर्सियाँ हमने कादिर साहब के कमरे में लगवा दीं। अब सूरत यह है कि वे दोनों कमरे तो उन्होंने सम्हाल रखे हैं। हम बालकनी में उठ आये हैं। वही हमारा सोने का कमरा है। दिन भर में वहाँ बैठा आने वालों से मिलता जुलता और काम करता हूँ। और बेगम रशीद सारा दिन बैठी किचन में सड़ती हैं।

(शहबाज़ और भी जोर से ठहाका मारता है।)

रशीद भाई : (अपनी जलन में) यही बात नहीं। मेरे फ़्लैट में दो बाथ रूम थे। जिनमें से एक में हम नहाते थे और दूसरे में घाटन बर्तन मलती थी। बेगम कादिर ने तीसरे दिन निहायत बेतकल्लुफ़ी से इस दूसरे बाथ रूम को अपने कब्जे में ले लिया और घाटन से कह दिया कि बर्तन रसोई घर में मले। यही नहीं, स्टोर रूम से सारा सामान निकाल कर उन्होंने गैलरी में लगा दिया और स्टोर रूम में अपना किचन बना लिया। किचन का बनाना था कि मेरी नौकरानी 'आनी' को उन्होंने अपने आप ले लिया। अब जब मैं अपने घर की हालत और बेगम रशीद का चेहरा देखता हूँ तो जी चाहता है कि सिर को जोर से डायरेक्टर कादिर की मेज पर दे मारूँ और चिल्ला चिल्ला कर कहूँ कि हुज़ूर मुझे सोशल पिक्चर नहीं चाहिए। मैं स्टंट फिल्मों का लेखक ही भला।

(शहबाज़ फिर ठहाका मारता है।)

रशीद भाई : अब तुम मेरे दिल की हालत का अन्दाज़ा कर सकते हो। मैं तो ख़ूने-जिगर पी रहा हूँ। ह्विसकी की बात दूर रही।

शहबाज़ : (जिसके लिए ये सब परेशानियाँ व्यर्थ हैं जब कि सभी ग़मों का इलाज लाल परी बगल में हो, छुरी और काँटे की मदद से उनकी और अपनी प्लेट में कबाब आदि रखते हुए) हटाइए, आप भी ज़रा ज़रा सी बात को मन में जगह देते हैं। इतनी बड़ी ख्वाहिश आपकी पूरी हो गयी, और आप क्या चाहते हैं ? कुर्बानी तो हर चीज़ के लिए कुछ न कुछ देनी ही पड़ती है।

रशीद भाई : तुम्हें यह ज़रा सी बात लगती है। यहाँ तो मालूम होता है कि जन्नत में बैठे बैठे जहन्नुम में जा पड़े। अगर डायरेक्टर कादिर या मिस शमीम को दो महीने और मकान न मिला तो अपना तो बंटाढार हो जायेगा।

शहबाज़ : (मदिरा को फिर ढालते हुए) अजी आप गिलास उठाइए। ज्यादा तकलीफ़ हो तो मय भाभी मेरे यहाँ चले आइएगा।

[रशीद भाई की आकृति इस बीच में पहली बार कुछ आश्वस्त दिखायी देती है और उनके माथे से तेवर मिट जाते हैं और वे अपना हाथ गिलास की ओर बढ़ाते हैं, लेकिन बड़ी ही अनिच्छा का प्रदर्शन करते हुए]

रशीद भाई : अब तुम कहते हो तो... हालांकि मन पीने को बिलकुल

नहीं होता। (सहसा फिर माथे पर बल डालते हुए) लेकिन तुम्हारे पास तो सिंगल फ्लैट है हम आ गये तुम्हारे यहाँ तो तुम कहाँ जाओगे ?

शहबाज़ : (सोडे की बोतल का ढकना फक्क से उड़ाते हुए) हम फक्कड़ों का क्या है, बाहर सीढ़ी पर बिस्तर जमा लेंगे।

[अन्दर दूसरे कमरे में आरकेस्ट्रा बजने लगता है, शहबाज गिलासों में सोडा ढाल रहा होता है जब पर्दा गिर जाता है]

तीसरा अंक

[पर्दा शहबाज़ के सिंगल .फ्लैट के बाहर सीढ़ियों पर उठता है। बम्बई के छः छः सात सात मंज़िले मकान और उनके .फ्लैट जिसने नहीं देखे, उसके लिए इस जगह की कल्पना करना जरा कठिन है। यों समझ लीजिए कि स्टेज की सारी दायीं तरफ़ नीचे से ऊपर को जाने वाली सीढ़ियों ने रोक रखी है। दर्शकों की ओर को, नीचे से आने वाली सीढ़ियों की, गोल मोटी लकड़ी की, रेलिंग दिखायी देती है। यह रेलिंग सीढ़ियों के साथ साथ ऊपर को मुड़ जाती है। स्टेज पर कोई सीढ़ी नहीं। इस जगह नीचे से आने वाली सीढ़ियाँ खत्म होती हैं और ऊपर की मंज़िल को जाने वाली सीढियां, स्टेज के दायीं ओर के परले आधे भाग में, शुरू होती हैं। बम्बई की अच्छी इमारतों में ये सीढ़ियाँ काफ़ी चौड़ी होती हैं। हाथ में हाथ दिये तीन चार आदमी साथ साथ इन पर चढ़ उतर सकते हैं।

हर मंजिल के .फ्लैटों के आगे काफ़ी खुली जगह होती है, जहाँ प्रायः रात को फ़्लैटों के नौकर सोते हैं। किन्तु जगह की चौड़ाई के कारण, वे सीढ़ियों से चढ़ने उतरने वालों के मार्ग की बाधा नहीं बनते।

सामने की दीवार में एक दरवाज़ा है जो शहबाज़ के सिंगल फ़्लैट[1] को जाता है।

बायीं दीवार में एक दरवाज़ा है जो एक दूसरी फ़्लैट को जाता है, जिसमें एक पञ्जाबी परिवार रहता है।

पर्दा उठते समय सब दरवाजे बन्द हैं, केवल शहबाज के ड्राइंग रूम का दरवाजा थोड़ा सा खुला है और हम शहबाज़ और उसके किसी मित्र की बातचीत की आवाज़ सुनते हैं।

एक आदमी ऊपर की सीढ़ियों से जल्दी जल्दी उतरता है और उसी स्पीड से नीचे चला जाता है। फिर दो व्यक्ति मन्थर गति से नीचे से आते हैं और ऊपर चले जाते हैं। एक संगतरे केले वाला नीचे से आता है और दोनों फ़्लैटों के आगे क्रम से 'संतरा केला पाइजे साब' की आवाज लगाता है और प्रत्युत्तर न पाकर ऊपर चला जाता है। फिर एक नौकर छोकरा 'जमाई' फिल्म का गाना गुनगुनाता ऊपर से उतरता है]

छबीली री
मोसे आँखों को चुराना नहीं अच्छा
चुराना
छिपाना
लजाना
नहीं अच्छा
छबीली री.........

---

१. बम्बई के फ़्लैटों में साधारणतया दो कमरे, किचन और बाथ रूम होता है। सिंगल फ़्लैट में केवल एक कमरा, बाथ रूम और किचन होता है।

एक एक सीढ़ी उतरता है और 'चुराना', 'छिपाना', 'लजाना' कहता है और 'नहीं अच्छा' कहते हुए रेलिंग के मोड़ पर हाथ घुमाता हुआ नीचे की सीढ़ियों में गुम हो जाता है।

नीचे से किंचित मैली धोती के ऊपर बन्द गले का मैला सा कोट पहने हाथ में छड़ी लिये, कोट के कालर को बांये हाथ से ठीक करते हुए एक गुजरातीमहाशय आते हैं, और बायीं ओर वाले दरवाजे पर दस्तक देते हैं।

कोई आवाज़ नहीं आती। फिर दस्तक देते। हैं]

अन्दर से : कौन ऐं ?

[लहजे से पता चल जाता है कि बोलने वाला पञ्जाबी है, और क्रोध में है।

आगंतुक फिर दस्तक देता है। क्षण भर बाद खट से दरवाजा खुलता है और गले में बनियान और कमर में तहमद पहने एक बिगड़ा हुआ पञ्जाबी झाँकता है।]

गुजराती : (तनिक हँसकर कद्रे बेतकल्लुफ़ी से) कैम सेठ।[1]

पञ्जाबी : (अजीब पञ्जाबी मिली हिन्दुस्तानी में झल्लाये स्वर से) ओए कैम ते होया पर एह दस्स कि इह दस्तक देण दा की तरीका है। एह घंटी दा बटन किस लई है। मालिक मकान के तुम मनेजर हो, तुमको इतना भी पता नहीं कि बुलाना हो तो बटन को दबाना

---

१ कैसे हो सेठ।

चाहिए (अपने आप से) मार दरवाजे तोड़ दित्ते हुए। बोलो क्या बात है[1]।

गुजराती : किराये के वास्ते आये हैं सेठ।

पञ्जाबी : किराया ! दो हज़ार रुपया तेरे सेठ को पगड़ी दी, अभी उसका पेट नहीं भरिया।

गुजराती : पन पगड़ी से किराये का कइसा वास्ता। तीन महीना होने को आया है सेठ। तुमको किराया जल्दी देने को मांगता है नहीं तो........

पञ्जाबी : (भ्रूभंग किये एक पग आगे बढ़कर) नहीं ते की...... मुकद्‌मा कर देगा तेरा सेठ, घर से निकाल देगा ! जा कह दे अपने सेठ नूं कि जब तक पगड़ी की रकम पूरी नहीं करेंगे, कौड़ी किराया नहीं देंगे।

[जैसे जैसे पञ्जाबी आगे बढ़ता जाता है मैनेजर पीछे हटता जाता है यहाँ तक कि सीढ़ी के किनारे आ खड़ा होता है]

गुजराती : हमको मालूम होता तुम पञ्जाबी है, हम तुमको कभी फ़्लैट नहीं देने को कहता। हमको इसका तीन हज्जार पगड़ी मिल रहा था। ओ वक्त तो मस्का पालिश कर के ले लिया, अब किराया माँगने को आता है तो मवालीगीरी[2] ...

---

१ अरे कैम तो हुआ, तुम यह बताओ कि दस्तक देने का यह क्या तरीका है, यह घंटी का बटन किस लिए है ? मालिक मकान के तुम मैनेजर हो तुमको यह भी पता नहीं कि बुलाना हो तो घंटी को बजाना चाहिए। २ मवाली गीरी=गुंडा गीरी।

पञ्जाबी : ओये मुंह सम्हाल के बात कर ! मवाली तेरा बाप होएगा । एधर[1] ते आ, दस्सां तैनूं कि......

(हाथ बढ़ा के उसके कोट का कालर पकड़ता है ।)

गुजराती : (उसका हाथ छुड़ाते हुए) देखो सेठ...देखो...हाथ चलाने का काम नहीं है...मुँह से बात करने को माँगता है ।

(कोट का कालर छुड़ा, पलट कर भाग जाता है ।)

पञ्जाबी : (पलटते हुए अपने आप) साला मुंह से बात करने का । डेढ़ कमरे की, जिसे कोई दस में भी न पूछे, दो हज़ार रुपया पगड़ी लेली, ऊपर से पचीस किराया माँगता है । माल सामान पिंडी के मुसलमानों ने लूट लिया, जमा पूंजी तेरे सेठ को पगड़ी में दे दी, मवाली असीं एं कि साला तेरा सेठ !

[दरवाज़ा ज़ोर से बंद कर अन्दर चला जाता है ।

तभी शहबाज़ के ड्राइंग रूम का दरवाज़ा खुलता है और शहबाज़ एक दूसरे युवक के साथ बाहर निकलता है । वह युवक उन हज़ारों युवकों में से एक है जो हिन्दुस्तान के दूर-दराज़ कोनों से 'हीरो' बनने के लिए बम्बई आ पहुँचते हैं और आकर एक्स्ट्रा एक्टरों की फ़ौज में भरती हो जाते हैं और जिनमें से अधिकांश की आयु हीरो बनने के सपने देखते देखते बीत जाती है ।

बहरहाल इस समय युवक की आकृति पर हीरो का कोई चिन्ह नहीं । बम्बईया भाषा में नख से शिख तक उसके एक एक अंग से मस्केबाजी[2] टपकती है ।

---

१ इधर आ तो बताऊँ तुझे कि । २ मस्के बाज़ी = खुशामद

उसके झुके हुए कंधों से, बात करते हुए घोने के अन्दाज़ में हाथ मलते जाने से और बात बात पर खीसें निपोरने से।]

युवक : (दरवाज़े में से बाहर आते हुए) मैंने कहा शहबाज़ भाई को सुबह सुबह न पकड़ा तो फिर रात बारह बजे तक उनकी सूरत भी दिखायी न देगी। यह देख लीजिए कि इस वक्त सात बजे हैं और मैं 'गोरे गाँव' से यहाँ पहुँच गया हूं।

[युवक के पीछे पीछे शहबाज़ निकलता है—ज़मीन पर लटकता तहमद और चमकते गुलाबी टाफटे की बुशशर्ट पहने हुए—प्रकट है कि रात ही के लिबास में है।]

शहबाज़ : तुम न आते तो मैं नौ बजे तक नींद के मज़े लेता। तुम्हें अभी बम्बई आये बहुत दिन नहीं हुए हैं न और तुम्हारे कस्बे के लोग रात के नौ बजे खुर्राटे लेने लगते हैं और तड़के चार बजे उठ कर नमाज़ पढ़ते हैं। बम्बई में बारह एक से पहले सोना और नौ से पहले उठना गुनाह ख़याल किया जाता है।

युवक : (दाँत निपोरते हुए) आपकी नींद खराब होने का मुझे बेहद अफ़सोस है शहबाज़ भाई, लेकिन आपके मिलने का कोई ठीक नहीं। यकीन मानिए यह बोतल तीन दिन से पड़ी हुई है और मैं यहाँ, कम से कम, दस बार चक्कर लगा गया हूँ। पर न आपके दर्शन हुए और न आपके नौकर के।

शहबाज़ : नौकर यहाँ किस कम्बख़्त के पास है। एक रखा था सो एक दिन बिस्तर और कपड़े लेकर चम्पत हो

गया। मेहतर आता है सो सफाई उफाई कर जाता है, चाय नीचे इरानी के रेस्तोरां से आ जाती है और खाना कोलाबा में खा लेता हूँ।

[शहबाज़ रेलिंग का सहारा लेकर खड़ा हो जाता है।]

युवक : (हाथ मलते हुए) क्या बताऊँ, रात इदरीस लौटा एक बजे, उससे पता चला कि दादर बार में आप रशीद भाई के साथ बैठे थे। दादर बार में गये हैं तो बारह से पहले क्या लौटे होंगे और बारह बजे लौटे हैं, तो सुबह घर पर ज़रूर मिल जायेंगे, यही सोच कर मैंने सुबह की गाड़ी पकड़ी और चर्च गेट आकर उतरा (हाथ मलता और हीं हीं करता है) क्या बताऊँ जेब आज कल कुछ खाली है शहबाज भाई, बस मिली नहीं और विक्टोरिया वाला डेढ़ रुपया मांगने लगा सो पैदल आया हूँ। बम्बे टाकीज़ में एक लड़का है। शायद प्रॉपर्टी डिपार्टमेंट में काम करता है। हमेशा कहीं न कहीं से इन्तज़ाम कर देता है स्कॉच का। मारवी बीच के फ़ौजिओं से सांठ गांठ कर रक्खी है उसने। अतरसों रात लाया। पचास रुपये माँगता था। मैंने कहा तुमने तो उन्तीस ही में ली होगी किसी फौजी से, पैंतीस ले लो। छः रुपये क्या कम हैं तुम्हारे लिए? कहने लगा तुमसे वादा किया था सो तुम्हारे पास लाया हूँ, नहीं चन्द्रमोहन तो पचपन में खुशी से ले लेगा। हाँ मुझे वालकेश्वर जाना पड़ेगा। आखिर पैंतालिस में उससे सौदा हुआ। खुशकिस्मती से रहमान दादा ने एक जगह

दस रुपये रोज़ पर दस दिन काम कराया था, रुपये पास थे, झट से रुपये देकर बोतल ले ली। आपने कह रखा था, इसलिए बोतल तो जरूर आती—चाहे हम पाताल से लाते।

शहबाज़ : मुझे तो कल जरूरत थी। रशीद भाई को बुला रखा था।

युवक : मैं तो दो तीन बार आया........

शहबाज़ : मैं भी इसी चक्कर मे लगा हुआ था। रशीद भाई डायरेक्टर कादिर की अगली पिक्चर के डायलाग लिख रहे हैं और उन्होंने मेरे लिए हीरो के रोल की सिफ़ारिश की है। स्कॉच के बिना उनकी दावत का क्या मज़ा आता। जिन-फिन तो चलती ही रहती है।

युवक : मुझे बड़ा अफ़सोस है, नहीं बोतल तो अतरसों से पड़ी है। मुझे पता होता कि आप दोंदर बार में रशीद भाई को बुला रहे हैं तो मैं एक घंटा पहले पहुँच जाता। लाने और ले जाने की भी तो मुसीबत है। ब्लैक से लानी पड़ती है, पुलिस के हाथ पड़ जायं तो......

शहबाज़ : मैं तो हमेशा टैक्सी कर लेता हूँ।

युवक : आप की क्या बात है, आप ठहरे हीरो, और फिर अब डायरेक्टर कादिर की फिल्म के हीरो बनने जा रहे हैं। ज़रा हम गरीबों का भी ख़याल रखिएगा। कहीं छोटा मोटा बोलने का रोल दिलाइएगा। गूंगों की तरह भीड़ का हिस्सा बनते बनते तो तबीयत ऊब गयी है।

शहबाज़ : हाँ हाँ क्यों नहीं! जरा स्टूडिओ में दो चार दिन जायँ, तो पता चले—कैसी कहानी है, कैसे रोल हैं... हफ़्ते दो हफ्ते में मिलना। तभी बोतल के पैसे...

युवक : अरे शहबाज़ भाई आप क्या शरमिन्दा करते हैं? आपके हमारे पैसे कोई दो हैं!

[शहबाज के हाथ को अपने दोनों हाथों में लेकर बड़ी गर्मजोशी से दबाता है]

युवक : अच्छा, तो अगले जुमे को......

शहबाज़ : लेकिन इतनी सुबह नहीं।

युवक : (खिसियानेपन से) नहीं नहीं, अब ऐसी ग़लती नहीं होगी। अच्छा आदाब......

[जल्दी जल्दी सीढ़ियाँ उतर जाता है। शहबाज़ बड़े इतमीनान से सीटी बजाता हुआ अपने कमरे में चला जाता है।

पञ्जाबी के फ़्लैट का दरवाज़ा खुलता है। पञ्जाबी हाथ में झोला लिये हुए निकलता है। बनियाइन पर उसने कमीज़ पहन ली है। पीछे दरवाज़े में पञ्जाबिन झांकती है।]

पञ्जाबिन : जल्दी आना। ओत्थे ई[1] न बैठ रहना। ओ गुजराती शायद फ़ेर आवे।

पञ्जाबी : (मुड़ कर) आये ते फ़ेर की? खा लऊगा की? पंज छै औरतां तुसीं घर हो। कह देणा कि ओह बाहर गये ने, आणगे ते ओहना नाल ई गल्ल करना।[2]

---

१ वहीं। २ आयगा तो फिर क्या? खा लेगा क्या? तुम पांच छै स्त्रियां घर में हो, कह देना कि वे बाहर गये हैं, आयेंगे तो बात करना।

[जल्दी जल्दी सीढ़ियाँ उतर जाता है। पङ्काबिन दरवाज़ा बन्द कर लेती है। क्षण भर स्टेज पर सन्नाटा रहता है। फिर नीचे से हाशिम, रणजीत और प्राण आते हैं। हाशिम सबसे आगे आगे निर्भीक आ रहा है। शेष दोनों की गति में झिझक है। आकर रेलिंग के पास खड़े हो जाते हैं।]

हाशिम : (शहबाज़ के फ़्लैट की ओर संकेत करके) यह है फ़्लैट शहबाज़ का।

प्राण : शहबाज़, लेकिन हम तो हेमन्त से मिलने आये हैं।

रणजीत : यार तुम निरे बण्डल हो। अरे, हेमन्त का असली नाम तो शहबाज़ है। हेमन्त उसका फ़िल्मी नाम है। जैसे यूसुफ का दिलीप कुमार। फ़िल्म में सब चलता है।

हाशिम : अच्छा तुम लोग यहाँ ठहरो, मैं ज़रा मिल आऊँ शहबाज भाई से और देखूं, कोई तिकड़म लगता है या नहीं। वाकफ़ीयत तो मैंने कर ही ली है। अगर वो सचमुच डायरेक्टर कादिर की फ़िल्म का हीरो होने जा रहा है तो अभी से मस्का पालिश* करना चाहिए। फिर दिमाग चढ़ गया तो पहचानेगा भी नहीं।

रणजीत : लेकिन हाशिम भाई, हमें न भूल जाना! खुदा गवाह है, पान शाप में गरम कोट रख कर पैसे जुटाये हैं ५५५ के इन डिब्बों के लिए।

हाशिम : अरे तो क्या पैसे होने से ही ५५५ मिल जाता है

* मस्का पालिश करना चाहिए = खुशामद करनी चाहिए।

आजकल ? दो दिन साला डेक में खड़े रहे, तब जाकर एक अमेरिकन से बड़ी मुश्किल से ले पाये। और फिर जैसे पुलिस से आँख बचा के निकले हैं, वह किसी ऐसे वैसे का काम है ? तुम एक कोट को रोते हो, हम साला पकड़े जाते तो अन्दर हो जाते, लाओ एक सिगरेट पिलाओ !

रणजीत : हमारे पास तो बीड़ी है साली। कल किसी तरह केप्स्टेन की एक डिबिया खरीदी थी सो श्री साऊंड में साले अजन्ता के युनिट वाले पी गये और काम के लिए टाल दिया हफ्ते भर के लिए !

(जेब से बीड़ी निकाल कर सुलगाता है।)

हाशिम : (प्राण से) तुम्हारे पास है ?

प्राण : शायद हो एक आध !

[जेब से केप्स्टेन की एक डिबिया निकालता है, जिसमें से एक सिगरेट हाशिम को देता है और उसी डिबिया में से एक बीड़ी निकाल कर मुंह में लगाता है।

रणजीत एक और दियासलाई जला कर दोनों की सिगरेट और बीड़ी सुलगाता है।]

हाशिम : (दो एक कश लगाकर) अच्छा तो मैं ज़रा शहबाज़ से मिल आऊँ। अपना इनफ़रमेशन साला कभी गलत नहीं हो सकता। शहबाज़ ज़रूर डायरेक्टर कादिर की फिल्म में काम करेगा।

रणजीत : हमारी बात वहाँ जाते ही भूल न जाना। साले बस एकस्ट्रा सप्लायर रहमान के साथ काम करते करते तो जान आफ़त में आ गयी है। बस छोटा सा रोल

दिलवा दो। पहले जो पैसा आये उससे ह्विस्की की बोतल मँगायी जाय।

हाशिम : अब देखो टिप्पस भिड़ाता हूँ। तुम यहाँ रुको। कोशिश तो करूँगा कि तुम लोगों को कम से कम उनसे मिला दूं, लेकिन आज अगर इतना न हो सका तो फिर किसी दूसरे दिन पर सही। जरा रंग बँध जाय फिर तो इकट्ठे बैठ पिये खायँगे।

[बायें कंधे को ज़रा झटका देकर शहबाज़ के कमरे की ओर जाता है और जाकर दस्तक देता है। क्षणभर बाद शहबाज़ दरवाज़ा खोलता है और हाशिम आदाब बजाते हुए अन्दर होकर दरवाज़ा बन्द कर लेता है।] no 22-5/5.

प्राण : वाह् लणजीत भाई, कमाल कर दिया तुमने ! कोट हमाला पान शाप में गया और हमाला जिक्ल तक नहीं किया।

रणजीत : कहा तो था कि कोट रख के सिगरेटों के पैसे जुटाये हैं ?

प्राण : अले पल कोट तो हमाला था न।

रणजीत : तुम भी यार अजीब बण्डल हो, तुम्हारे हमारे में कोई फ़र्क़ है।

प्राण : पल हमाले लिए कुछ कहा तो होता। लाश्ते भर तुम अपनी आवाज की, अपने एक्टिंग की, अपने डायलाग की, अपनी बाडी (Body) की ही बातें कलते लहे। एक बाल भी तो यह नहीं कहा कि यह शाथ में चुग़द जो चला आ लया है, वह भी कुछ जौहल लखता है।

रणजीत : जौहर तो तुम यही रखते हो न कि हेमन्त कुमार का असली नाम शहबाज है, यह भी नहीं जानते। अभी तो साला एक ही महीना बम्बई में आये हुए गुजरा है तुम्हें। दो एक साल हमारी तरह यहाँ की खाक छानो फिर अपने आप हो जायगा सब कुछ !

प्राण : औल कोट हमाला यों ही गिलवी लखवा दिया।

रणजीत : तुम साला खाली पीली बूम मारता है*। अरे अगर अपने को रोल मिला तो तुमको वहाँ लिये बिना हम मानेंगे क्या ? एक का काम बने तो दूसरे का बने। एक ही बार उसे दोनों के लिए कैसे कहा जा सकता है ? मैं तो आठ-दस फिल्मों में काम भी कर चुका हूँ। तुमने तो अभी स्टूडियो की सूरत भी नहीं देखी। एक बार स्टूडियो के अन्दर पहुँच जायँ। इतने में ही कोट की कीमत निकल आयगी।

प्राण : पाँच शौ घल से उठा कल भागा था। एक महीना भी नहीं हुआ कि शब बलाबल हो गये, श्टूडियो की शूलत तक नहीं देखी।

रणजीत : पर पाँच सौ में तुमने जो पा लिया, वह तो दूसरों को पाँच हज़ार में भी नसीब नहीं होता। क्या क्या गुर बताये हैं तुम्हें हमने। कोई साला हज़ार रुपया देता तो न बताते। तुम ने डेढ़ महीने में पाँच सौ खर्च करके वह सब सीख लिया जो हमने डेढ़ बरस में डेढ़ हजार रुपये फूँक कर सीखा। यही सिगरेट और बीड़ी की बात लो, कितनी आसानी से बिना

---

* बेकार शोर मचाता है।

ज्यादा खर्च किये, तुम काम बना सकते हो? केप्स्टेन की डिब्बी के अन्दर कुछ सिगरेट और कुछ बीड़ियाँ। किसी से काम लेना हो तो झट से उसे केप्स्टेन का सिगरेट पेश करो और खुद बीड़ी सुलगा लो। कुछ पैसे हो गये तो केप्स्टेन की डिबिया की जगह कैमल या स्टेट एक्सप्रेस का डिब्बा और बीड़ी की जगह केप्स्टेन का सिरगरेट ले लेगा। दिन में हमें बीस आदमियों से मिलना पड़ता है। बीस को हम केप्स्टेन या केमल के सिगरेट पिलायें और बीस बार खुद पियें तो अपना तो दिवाला पिट जाय। अरे हमारी क्या बात है, यहाँ बड़े बड़े लोग यह फ्रॉड (Fraud) करते हैं। फ़र्क सिर्फ डिगरी का है। तुमने गुलाम मुहम्मद को नहीं देखा। हाथ में ५५५ डिब्बा और उस पर दियासलाई की डिबिया! जब किसी बड़े आदमी से मिलता है तो झट डिब्बा आगे बढ़ा देता है। अमरीकन सिगरेट आजकल मिलते नहीं। बड़े बड़े डायरेक्टर उन्हें पीने को लालायित हो जाते हैं। लेकिन तुमने ग़ौर नहीं किया—नज़र बचाकर जो सिगरेट गुलाम मुहम्मद पीता है, वह अमरीकन नहीं, बल्कि अपनी ही स्वदेशी कम्पनी का होता है। आदमपुर दोआबा के खादी ब्रेण्ड का न सही, जालन्धर छावनी की सिगरेट फैक्टरी का सही—लाल बादशाह!...लाल बादशाह के आगे, गुलाम मुहम्मद कहता है, अमरीका छोड़ सारी दुनिया के सिगरेट मात हैं।

Fraud = धोखा

प्राण : लेकिन भाई यह गुल तो जभी अजमाय जायेंगे, जब बम्बइ में लहने का ठिकाना होगा। घत्त तो अब देखो मैं जाऊंगा नहीं, चाहे मुझे ऐमलोशिया में बैले की नौकली कलनी पड़े। एक भी किताब धल में छोड़ कल नहीं आया। शर्मा की शभी बेच आया हूँ औल ऊपल से शाइकिल भी।

रणजीत : तुमने साइकिल ही पर बस की, मैं तो अपनी अम्मा के गहने उठा लाया था, लेकिन तुम घबराओ नहीं. जैसे हमारा चला है, वैसे तुम्हारा भी चलेगा। अरे लोग यहाँ डायरेक्टरों, प्रोड्यूसरों के साइस और ड्राइवर और मशहूर एक्टरों और एक्ट्रेसों के खान-सामे और रसोईये तक बन कर आगे बढ़े हैं। डायरेक्टर हबीब इम्पीरीयल कम्पनी का चौकीदार था और देखलो बीवी को साथ लिये विलायत के मजे ले रहा है। तुम्हारे पाँव में तो पच्चीस रुपए का जूता है। अपने तो देखो यह अढाई रुपये की चप्पल, वह भी अपनी नहीं, बल्कि सुलेमान की उठायी हुई है। रहमान दादा से तो मैंने करदी है तुम्हारी सिफारिश, जहाँ भी उसे नया कॉन्ट्रेक्ट मिला, वह तुम्हें ले लेगा। बाकी कोशिश तो हो ही रही है। हमें डेढ़ साल हो गया कम्पनियों की खाक छानते, अभी तक एक ढब का रोल नहीं मिला। कुछ देर तो तपस्या करना ही पड़ेगी तुम्हें! और फिर साला कोई डायरेक्टर तुम्हारे लिए खास ही कहानी लिखे तो तुम रोल पाओ! 'स' को तुम 'श' बोलते हो और 'र' को 'ल'। ज़रा मेरा काम बनने दो यहाँ। मैं कादिर भाई से तुम्हें

मिलाऊँगा और उनसे कहूँगा कि तुम्हें नज़र में रख कर अपनी अगली फिल्म की कहानी लिखें। मैं कहता हूँ, तुम्हारे पास तो इस थथलाहट के रूप में एक बहुत बड़ी दौलत है। यहाँ बड़े डील-डौल और खूबसूरत क़द-बुत को कोई नहीं पूछता। साले बड़े बड़े यूसुफ़ अशोक कुमार और पृथ्वीराज बने एक्स्ट्रा सप्लायरों की जूतियाँ सीधी करते हैं। तुम्हारा यह टेढ़ा बेंगा शरीर लुकुवे का मारा चेहरा और थथली बोली......भगवान कसम, एक बार तुम्हें कोई डायरेक्टर काम का मिल गया तो तुम वी० एच० देसाई को मात दे दोगे। देसाई पर्दे पर आता है तो लोग हँसते हैं। तुम्हारे तो नाम का ख़याल आ जाने से लोगों को हँसी आने लगेगी।

प्राण : (प्रसन्न होकर) फ़र्श्ट ईयल में मैंने एक नाटक में काम किया था। पाल्ट तो बड़ा गम्भील था, पल मेले श्टेज पल आते ही लोग हँशने लगे। औल जितना मेला पाल्ट शफल लहा, औल मैंने लोगों को हँशाया उतना किसी ने भी नहीं हँशाया। उशके बाद दूशले वल्ष किशी ने मुझे पाल्ट ही नहीं दिया। कहने अगे, ओग तुम्हें देख कल हँशते हैं। अए शाओ यदि हँशते हैं तो हँशने का लोअ दो।

रणजीत : भगवान कसम, मैं तुम्हें रोल लेकर दूँगा प्राण भाई, ज़रा मामला जम लेने दो।

[शहबाज़ के ड्राइंग रूम का दरवाज़ा खुलता है और हाशिम वापस आता है।]

हाशिम : (खिसियानी सी हसी हँसते हुए) शहबाज़ भाई को

अभी प्रोड्यूसर वाडीलाल से मिलने जाना है। वो नहाने जा रहे थे, इसलिए मैंने उन्हें ज्यादा तकलीफ़ देना मुनासिब नहीं समझा। नहीं, मैं तुम दोनों को अन्दर बुलवा लेता।

रणजीत : खैर हमारा छोड़ो कुछ तुम्हारा काम बना कि नहीं ?

हाशिम : (उदासीनता से) हाँ, मुझसे उन्होंने वादा किया है कि इसमें नहीं तो अगली फिल्म में जरूर रोल ले देंगे। अरे भई मुझे खुद तो रोल की ज़रूरत नहीं, पर तुम लोगों को वहाँ ले जाने के लिए मुझे भी झख मारनी पड़ेगी। नहीं तो मैं एक्टरी-फ़ेक्टरी को पसन्द नहीं करता। (हँसता है, फिर सहसा गम्भीर होकर कुछ और भेद भरे स्वर में रणजीत के कन्धे पर हाथ रखते हुए और आवाज़ धीमी करते हुए) बात यह है कि उसे ज़रा और खुश करना पड़ेगा। आजकल तुम लोग दस रुपया फ़ी दिन पाते हो, जिसमें से तीन-चार तो रहमान दादा की भेंट हो जाते हैं, अपने पल्ले तो कुछ ज्यादा पड़ता नहीं, फिल्म में बोलने का रोल मिल गया तो पच्चीस रुपया दिन से क्या कम मिलेगा ? और अगर कहीं किस्मत लड़ गयी तो फिर सौ हज़ार फ़ी दिन भी कुछ ज्यादा नहीं। अशोक कुमार, मालूम है, एक लाख रुपया फी फिल्म लेता है और हफ़्ते में दो दिन काम करता है। अब हिसाब लगा लो। (आवाज को और धीमा करके) यार कहीं से बोतल का डौल बन जाता तो बड़ा अच्छा होता।

रणजीत : अपने पास तो कोट था सो गिरवी रख दिया।

हाशिम : प्राण से कहो, इसका तो मैंने खास जिक्र किया है शहबाज़ भाई से।

प्राण : मैं तो पहए ही अपना कोट......

रणजीत : (उसकी बात काट कर उसके कन्धे को थपथपाते हुए) अरे भाई जितना बड़ा इनाम उतनी बड़ी कुरबानी ! एक बार कल्पना तो करो कि हम सफल एक्टर बन गये हैं। कम्पनी के डायरेक्टर और प्रोड्यूसर कान्ट्रेक्ट और कारें लिये हमारे पीछे पीछे भागे फिरते हैं। आसमान से गिरती हुई सफेद बर्फ के गालों से सफेद चमचमाते नोट हमारे ऊपर बरस रहे हैं। तब क्या यह कोट और जूते हमें याद भी रहेंगे (उसके कन्धे को थपथपाते हुए इस तरह जैसे उसे अचानक ख्याल आ गया) बाई दी वे (By the way) मैं कहता हूँ कि इन जूतों को गिरवी रख के क्यों न कुछ जुटाया जाय। जूते तो तुम्हारे बिल्कुल नये हैं।

प्राण : (लगभग भरे गले से) आने के चन्द दिन ही पहए खरीदे थे।

रणजीत : जरा निकालो तो देखें।

प्राण : एकिन मैं।

हाशिम : अरे निकालो, साला क्या एक जूते के लिए रोता है। साला शहबाज भाई खुश हो गया तो सौ रुपए का जूता पहन कर चौपटी पर घूमना।

रणजीत : (लगभग बरबस प्राण का जूता उतरवा कर हाथ में लेकर देखते हुए,) डबल क्रेप सोल है।

हाशिम : (रणजीत से लेकर अच्छी तरह निरीक्षण करते हुए) काफ लेदर है। कितने का लिया था? पच्चीस, तीस या......।

प्राण : पैंतीस लुपए का ईया था।

हाशिम : पन्द्रह रुपए मिल जायँगे इसके पान शाप में।

रणजीत : पन्द्रह मिल जायें तो बाकी का इन्तज़ाम मैं किसी न किसी तरह कर दूँगा।

हाशिम : तो चलेगा।

[जूता हाथ में लिये सीढ़ियाँ उतरता है, रणजीत उसके पीछे चलता है।]

प्राण : (एक ही पाँव में जूता पहने दोनों के पीछे जाते हुए) एकिन मैं पहनूँगा क्या।

हाशिम : (सीढ़ियों में उतरते हुए) साला पहनेगा क्या, अढ़ाई रुपए का चप्पल भी चलेगा।

रणजीत : (सीढ़ियों से) देखो प्राण भाई, मैंने चप्पल पहन रक्खा है। आजकल कोई दिल वाला नौजवान जूता पहनता है क्या? जूता तो बूढ़ों का पहनावा है। कोट भी बम्बई में कोई नहीं पहनता। यहाँ का पहनावा है बुश्शर्ट, पैंट और चप्पल! इसलिए हमने वह साला कोट पान शाप में रख दिया। रोल मिल गया ढब का तो भगवान कसम दर्जन बुश्शर्ट और दर्जन चप्पल लेंगे।

[तीनों सीढ़ियों में गायब हो जाते हैं।

कुछ क्षण स्टेज पर निस्तब्धता छायी रहती है। केवल बेक-ग्राउंड में मोटर की 'पोंपों' का शब्द आता है

जो धीरे धीरे गुम हो जाता है। फिर कुछ क्षण बाद वही नौकर लड़का एक झोले में कुछ तरकारी लिए उसी तरह गाता हुआ ऊपर को जाता है :]

छबीली री, मोसे आँखों का चुराना नहीं अच्छा
चुराना
छिपाना
लजाना
नहीं अच्छा
छबीली री......

[ऊपर की सीढ़ियों में गायब हो जाता है। क्षण भर बाद वही गुजराती मैनेजर अपने कोट के कालर पर हल्की सी घबराहट में हाथ फेरता आता है। साथ में उसके बुश्शर्ट और पैंट में वेष्टित एक युवक है—जो बिल्डिंग का स्वामी है।]

मैनेजर : हम उसको बोल दिया कि तीन महीने का किराया हम को माँगता है, नहीं कोरट में मामला चला देंगा। पन ओ मारा-मारी करने को दौड़ा।

मकान मालिक : हम एक बार उसको बोल देंगा। यह पञ्जाबी लोग साला बड़ा हैरान करता है। हम देता नहीं, पन हमारे रमेश भाई का सिपारिश लाया। मारा-मारी करेंगा, जेल जायँगा। तुम घाबरो नहीं। हम सब ठीक कर देंगा।

[मैनेजर बढ़कर दस्तक देने लगता है, फिर कुछ याद आने से काल बेल के बटन पर अँगुली रखता है। अन्दर से पञ्जाबिन की आवाज़ आती है।]

पञ्जाबिन : कौन एँ ?

मैनेजर : दरवाज़ा खोलो।

[कुछ क्षण तक कोई उत्तर नहीं आता, न कोई दरवाज़ा खोलता है।

मैनेजर : एकदम बदमाश लोग है, पहले तो मस्का पालिश करके मकान ले लेंगा फिर सीधा मुँह बात नेईं करेंगा, किराया माँगने को आयेंगा तो बूम मारेंगा, सिर फोड़ने को आयेंगा, मारा-मारी करेंगा। थाना कोतवाली बतायेंगा। एकदम मवाली है साला।

[फिर बढ़कर बटन पर अँगुली रखता है। खट से दरवाजा खुलता है और पञ्जाबिन भ्रू-भंग किये झाँकती है।]

पञ्जाबिन : की ऐ ?

मैनेजर : अपने सेठ को बोलो, उससे बात करने को माँगता है।

पञ्जाबिन : सेठ घर नईं। आये तो आना।

(दरवाज़ा बन्द कर लेती है)

मैनेजर : देखा, इनका औरत लोग भी मवाली है साला।

[दरवाज़ा फिर खुलता है। पञ्जाबिन चीखती हुई आगे बढ़ती है।]

पञ्जाबिन : की अखियाई, एह गाली माँ नू दित्ती है कि भैन नूँ ? वे मोया, वे मुर्दिया, वे खसमाखानियाँ,

मवाली तूं होएँगा, तेरा पेऊ होएगा, तेरा दादा होएगा।

[उसकी चीख-पुकार सुन कर उसके पीछे ही चार-पाँच और स्त्रियां निकल आती हैं किसी के हाथ में झाड़ू है, किसी के करछी, किसी के चिमटा और बेतहाशा गालियां देती हुई वे उनकी ओर बढ़ती हैं। मैनेजर और उसका मालिक इस अप्रत्याशित आक्रमण से भयभीत हो बेतरह भागते हैं।

कई मिनट तक सीढ़ियों पर खड़ी वे उन्हें गालियां देती हैं फिर वैसे ही चिल्लाती, गालियां देती वापस आती हैं।]

पञ्जाबिन : ऐह ख़समाखनिआं केही आफत मचायां ऐ। नाले दो हजार पगड़ी लै लई, नाले पंजाह रुपए किराया मंगदे हण।[२]

दूसरी : आलये साडी सरकार, ऐहा सारेआं मोटे ढिड वालेयाँ दा मक्कू ठप्प देणा ऐं।[३]

तीसरी : औरतां जान के खसमांखाने शेर हो रहे सांण, असीं पौड़ियां तों हेठां सुट्ट देणा सी।

---

१. क्या कहा! यह गाली मा को दी है कि बहन को, अरे मुर्दे, अरे मरजाने अरे अपने मालिकों को खाने वाले, गुंडा तू होगा।

२. इन अपने मालिकों को खाने वालों (प्रसिद्ध ज़नानी पञ्जाबी गाली) ने कैसी आफ़त मचायी है, दो हज़ार रुपया पगड़ी भी ले ली और पचास रुपए किराया भी मांगते हैं।

३. हमारी सरकार आ जाय (नाटक स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पहले का है) इन सब मोटे पेट वालों को दुरुस्त कर देंगे।

४. हमें औरतें जान मालिकों को खाने वाले शेर हो रहे थे, हम सीढ़ियों के नीचे फेंक देतीं उनको।

[एक एक करके अपने .फ्लैट में चली जाती हैं। ऊपरसे नौकर छोकरा फिर वही गाना गाता उतरता है]

छबीली री—मोसे आँखों को चुराना नहीं अच्छा
चुराना
छिपाना
लजाना
नहीं अच्छा
छबीली री...

[उसी तरह रेलिंग पर से घूमता हुआ नीचे सीढ़ियों में गायब हो जाता है। कुछ क्षण बाद नीचे से कवि प्रकाश और सतीश प्रवेश करते हैं।]

सतीश : क्या और भी ऊपर जाना है ? बम्बई की इमारतों में सबसे बड़ी मुसीबत तो यह सीढ़ियां हैं।

प्रकाश जी : (दार्शनिक भाव से) सीढ़ियाँ तो भाई जीवन के साथ हैं। जितना ऊँचा पहुँचना हो, उतनी ही सीढ़ियाँ पार करनी पड़ती हैं।

सतीश : जीवन की सीढ़ियों और इन सीढ़ियों में इतना ही अन्तर है कि जीवन में सीढ़ियाँ चढ़कर हम ऊपर पहुँचते हैं और इन इमारतों में सीढ़ियाँ चढ़ कर नीचे!

प्रकाश जी : (रेलिंग की गोलाई के पास रुक कर तनिक आश्चर्य से) क्या मतलब है तुम्हारा ?

सतीश : आपका क्या ख्याल है कि इन ऊँचाइयों पर रहने वाले सचमुच ऊँचे हैं ? जितने ऊँचे .फ्लैट पर कोई

रहता है उतना ही नीचा है। मैंने तो यहाँ इतने दिन में यही देखा है। बम्बई में आदमी ज्यों ज्यों जीवन की सीढ़ी चढ़ता है, इन इमारतों की सीढ़ी उतरता है। बड़े बड़े मिल मालिक तो मालाबार हिल या जुहू की कोठियों में रहते हैं, जहाँ एक से दूसरी मंज़िल नहीं और छोटे लोग इन ऊँचे फ़्लैटों के दड़बों में रहते हैं, जहां चढ़ते चढ़ते कमर टूट जाती है।

प्रकाश जी : लेकिन भाई कमर तो जीवन की सीढ़ियां चढ़ते हुए भी टूटती है। शहबाज़ सीढ़ी पर जहां आज है, वहाँ तक पहुँचने में भी न जाने उसे कितनी कमर तुड़ानी पड़ी है।

सतीश : मुझे कमर तुड़ाने में आपत्ति नहीं यदि सीढ़ियां चढ़ने में आनन्द आये।

प्रकाश जी : जीवन की सीढ़ी चढ़ने में किसे आनन्द नहीं आता?

सतीश : (तनिक हँसकर) सभी को आता हो, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता। फिर प्रश्न साधन का भी है। लङ्गड़ी टाँगें लिये हुए सीढ़ियां चढ़ने वाले लिफ़्ट से चढ़ने वालों सा आनन्द क्या पायेंगे और फिर किन के लिए हम सीढ़ियाँ चढ़ रहे हैं? क्यों चढ़ रहे हैं? किस की सहायता से चढ़ रहे हैं? किस उद्देश्य से चढ़ रहे हैं? ये भी तो प्रश्न हैं......

[नीचे से एक युवक जिसका नाम रफ़ीक है, एक युवती के साथ ऊपर आता है। युवती ने बुरक़े का घूंघट उठा रखा है। ओठों पर लिपस्टिक और

मुँह पर पाउडर है। भवें भी बनी हुई हैं और आँखों में सुर्मा है—दुम्बालादार !]

रफ़ीक : क्यों साहब कुछ बता सकते हैं कि शहबाज़ साहब कहाँ रहते हैं ? नीचे ईरानी ने तीसरे माले का पता दिया है।

प्रकाश जी : (शहबाज़ के फ़्लैट की ओर इशारा करते हुए) यह फ़्लैट है उनका।

[युवक आगे बढ़कर दरवाजे पर दस्तक देता है। युवती एक चंचल दृष्टि उनकी ओर फेंकती है। क्षण भर बाद शहबाज दरवाजा खोलता है। हजामत बनाते बनाते उठा है। दाढ़ी पर साबुन लगा है और हाथ में रेज़र है।]

शहबाज़ : अरे रफ़ीक, कैसे सुबह सुबह ?

रफ़ीक : मैंने तुमसे ज़िक्र किया था न। अपने दोस्त की बहन तसमीन खातून का। सो उन्हें मिलाने लाया हूँ।

शहबाज़ : अच्छा अच्छा, ले आओ।

[पूरा दरवाजा खोलता है। और तसमीन बेगम 'आदब-अर्ज' करती हुईं, बड़ी अदा से कमर को बल देकर अन्दर दाखिल होती हैं। दरवाजा बन्द करते समय शहबाज की निगाहें कवि प्रकाश से चार होती हैं]

शहबाज़ : अरे प्रकाश साहब (बाहर आकर उनसे हाथ मिलाता है) कहिए कैसे सुबह सुबह तकलीफ़ की।

प्रकाश जी : वह मैंने आपसे ज़िक्र किया था न, मरकत की अँगूठी का, वही मैं लाया हूँ।

(जेब से अँगूठी निकालने की चेष्टा करते हैं।)

शहबाज़ : (खुश होकर) अच्छा अच्छा अच्छा...ठहरिए ठहरिए मैं यहीं कुर्सी लाता हूं। (खिसियानी हंसी हंस कर) अन्दर तो मेरे दोस्त की बहन आ गयी है और कमरा मेरे पास, आप जानते हैं, एक ही है। मैं अभी कुर्सी लाता हूँ।

[हाथ में रेज़र लिये, उसी तरह चला जाता है और दो कुर्सियां घसीट लाता है]

— : आप बैठिए। मुझे दो मिनट की छुट्टी दीजिए मैं ज़रा यह (दाढ़ी की तरफ इशारा करता है) खत्म कर आऊँ। क्या करूँ परसों डायरेक्टर कादिर के साथ काम करने की बात का पता चला और आज छः बजे से मिलने वालों का ताँता लगा है। लोग समझते हैं जैसे डायरेक्टर कादिर मेरे चचेरे भाई हैं।

[हंसता है, प्रकाश जी उसके समर्थन में उसके साथ हँसते हैं। फिर :]

प्रकाश जी : (कुर्सी पर बैठते हुए सन्तोष और सब्र के साथ) हाँ हाँ, कर आइए हजामत।

शहबाज : (चलते चलते) आपकी पेशीनगोई[1] सोलहो आने ठीक निकली प्रकाश जी...लेकिन मैं अभी आकर बात करता हूँ। माफ कीजिएगा।

प्रकाशजी : नहीं नहीं आप कर आइए...कर आइए...

(शहबाज़ चला जाता है।)

---

* १ पेशीनगोई = भविष्य-वाणी

प्रकाश जी : बैठो सतीश, अभी चन्द मिनट में चलेंगे।

सतीश : (बैठते हुए जरा आवाजको धीमा करके) क्यों प्रकाश भाई आपको तनिक भी बुरा नहीं लगता।

प्रकाश जी : क्या ?

सतीश : यही...यही...यह सब......आपको कभी ख्याल नहीं आता कि आप एक बड़े ऊंचे दर्जे के कवि रहे हैं। प्रगतिशील कवि ! और आप कई बार जेल गये हैं और आपने मज़दूरों और किसानों के उत्थान-गीत गाये हैं। हिन्दी संसार को आपसे बड़ी आशाएँ हैं। देवली केम्प की नज़र-बन्दी और फ़िल्मों के इस खोखले दिखावे के जीवन में आपको कोई अन्तर नज़र नहीं आता ?

[प्रकाश कोई उत्तर नहीं देते, शहबाज़ के लिये जो अंगूठी उन्होंने निकाली थी, उसे हाथ में धीरे धीरे उछालते हैं]

सतीश : यह ठीक है कि आप उतने पतले-दुबले नहीं रहे। आर्थिक चिन्ताओं से मुक्त होकर आपके कल्ले भर गये हैं।...(तनिक हँसता है)...मैं तो आपको पहचान तक न पाया...आपका शरीर भर गया है। आपके फ़्लैट में छः सौ रुपये की अलमारी है, जिसमें कई तरह के नगीनों की अंगूठियाँ हैं। आपके कपड़े, आपका खाना, आपका रहन-सहन—सब बढ़िया है, लेकिन आपके और आपके मित्रों के सपने...?

[प्रकाश जी उत्तर नहीं देते, पूर्ववत् अंगूठी उछालते रहते हैं।]

सतीश : मुझे इतने दिन आपके पास रहते हो गये। मैंने आपसे कभी नहीं कहा, लेकिन प्रकाश भाई मुझे बड़ी तकलीफ़ होती है जब मैं देखता हूँ कि हिन्दी का एक बहुत ऊँचा कवि, जनता का गायक—'कल्पना नवीन तुझे प्रेरणा नवीन दूँ'—का रचियता, 'लाला हज़ारी जी, तेरे कारण मैं हो गयी बदनाम' लिखता है। टोने टोटकों, हस्त रेखाओं, ज्योतिष-नक्षत्रों और उनके क्रोध का प्रतिकार करने वाले पत्थरों का व्यापार कर फिल्म के मूर्ख, वहमी, शंकालु, एक्टरों और डायरेक्टरों को लुभाता है...

प्रकाश जी : (स्वर में हल्की सी चिढ़ है) लेकिन बुरा क्या है सतीश। क्या कवि के लिए अच्छा खाना पहनना, हीरे पुखराज या नीलम की अंगूठी पहनना पाप है ? क्या हिन्दी के पाठक अपने कवि से यही आशा करते हैं कि उसके कपड़े फटे हों, कल्ले पिचके हों, आँखें गढ़ों में धँसी हों। उसे क्या खाने पीने और सोने का अधिकार नहीं ? हिन्दी वालों को खुश होना चाहिए कि उनका भी एक आदमी ऐसा है जिसने अपनी प्रतिभा का सिक्का फिल्मी देवताओं से मनवा लिया है।

सतीश : (हल्का सा ठहाका मारता है) प्रतिभा या चातुरी का।

प्रकाश जी : चातुरी प्रतिभा ही का दूसरा नाम है।

सतीश : प्रकाश भाई, शायद प्रेमचन्द चतुर न थे कि इस फिल्म के संसार में असफल रहे। किन्तु उनकी प्रतिभा से कौन इन्कार कर सकता है। और हिन्दी का वह

महान् कवि, जिसके बच्चों के से भोले अहम ने चातुरी न सीखी और यद्यपि दूसरों ने उसका नाम ले लेकर लाभ उठाया, पर उसने स्वयं दूसरों की कृतज्ञता का बोझ सिर पर लिये बिना सरस्वती की देहली पर पागल बन कर रहना स्वीकार कर लिया, उसकी प्रतिभा से किसे इन्कार होगा।

प्रकाश जी : तुम प्रसन्न होते यदि मैं सम्पन्न दिखायी देने के बदले फटेहाल और पागल दिखायी देता।

सतीश : (कुछ कहना चाहता है, पर चुप रहता है।)

प्रकाशजी : हिन्दी के पाठक यथार्थ की आँखें नहीं रखते, अपने लेखकों और कवियों से वे आशा रखते हैं कि वे हवा का सेवन करें और स्वस्थ गीत लिखें। स्वस्थ गीत भूखे पेट से क्या निकलेंगे। स्वस्थ रचना के लिए स्वस्थ मन-मस्तिष्क चाहिए।

सतीश : प्रश्न फटे हाली या सम्पन्नता का नहीं, प्रकाश भाई। प्रश्न रचना का है। यदि आप इस सम्पन्नता में वैसी ही रचना कर सकते तो मुझे या आपके पाठकों को शिकायत न होती। पर ज्यों ज्यों आप फिल्मी जीवन की सीढ़ी पर चढ़ते गये, आपकी रचना नीचे उतरती गयी। प्रकाश भाई, जब मैं कभी आपके अतीत की सोचता हूँ तो मुझे बड़ा दुख होता है। देखिए अब मैं हूँ, न मेरा उतना नाम, न मुझमें उतनी प्रतिभा। मैं यदि किसी को मस्का लगाऊँ; या बुद्धिमान् को उल्लू और उल्लू को महा-उल्लू बनाकर अपना उल्लू सीधा करूँ; उस मोटे

दीक्षित अथवा इस पहलवान शहबाज़ को खुश करके सफलता की सीढ़ी पर चढ़ूँ तो शायद किसी को दुख न हो—सिवा मेरे अपने—आप हँसेंगे, पर मेरे हृदय में अब भी महान् कवि बनने की आकांक्षा है। बन पाऊँगा, कौन जाने ? क्योंकि मुझे तो अभी कोई जानता नहीं, पर आप...आप तो हिन्दी के काव्याकाश पर उज्ज्वल नक्षत्र की भाँति चमकते थे।

[शहबाज़ आता है। यद्यपि उसने तौलिये से मुँह पोंछ लिया है तो भी साबुन का एक आध धब्बा उसके चेहरे पर दिखायी देता है।]

शहबाज़ : माफ़ कीजिएगा, आपको बैठना पड़ा लेकिन शेव करते करते मैंने उनको भी निपटा दिया...(हँसता है) क्या किया जाय, कुछ ऐसा ग्लैमर (Glamour) है सिनेमा का कि जो उठता है सिनेमा में, हीरो या हीरोइन बनने को इच्छा रखता है। इस रोशनी के पीछे कितनी तारीकी है, इसे कोई नहीं जानता। अब मेरे दोस्त की बहन हैं कि हीरोइन बनना चाहती हैं। (हँ हँ कर हँसता है) अब इन्हें कैसे समझाऊँ कि उस लड़की के लिए जो किसी डायरेक्टर या प्रोड्यूसर की बहन, बीवी या चहेती नहीं, हीरोइन बनना कितना मुश्किल है। उस चोटी पर पहुँचने के लिए, जो दूर से सुनहरी रोशनी से जगमगाती दीखती है, कितनी गहरी घाटियों से गुज़रना पड़ता है, इसे दूर से उस चोटी की बहार देखनेवाले नहीं जानते।

[प्रकाश जी उसकी बात सुनते हुए बराबर अँगूठी उछालते रहते हैं]

शहबाज़ : (अचानक अँगूठी दबोच कर) तो यह अँगूठी आप लाये हैं मेरे लिए। नगीना तो बहुत बढ़िया है और गढ़ाई भी, कहाँ की बनी है ?

प्रकाश जी : नानूभाई के यहां की।

शहबाज़ : अरे भाई, वह तो बड़े जौहरी हैं। कितने को बनी ?

प्रकाश जी : तीस रुपये तो बनवायी लग गये, तोला भर सोना भी है और फिर नगीना – मरकत है, ज़मर्रद कहते हैं आपकी ज़बान में, बड़ा कीमती पत्थर है। दो सौ रुपये लग गये। और नानू भाई ने मुझसे रियायत की है, यह पचासवीं है जो वहाँ से बनवायी है।

शहबाज़ : लेकिन प्रकाश भाई अपनी जेब तो आजकल...

प्रकाश जी : अरे तो कोई जल्दी है, दे दीजिएगा। यह अँगूठी तो अपना दाम अपने आप निकाल लेगी। नगीने जब नक्षत्रों के अनुसार बैठते हैं तो बड़ी जल्दी अपना असर दिखाते हैं। ज्योतिषी तो यहाँ तक कहते हैं कि नगीना लेने का ख्याल तक भाग्य पर असर डालता है। आप इसे आज पहिनए और देखिए कि सात दिन के अन्दर अन्दर आपकी क़िस्मत चमकती है या नहीं ?

शहबाज़ : (अँगूठी पहनते हुए) हम तो आपके क़ायल हैं प्रकाश भाई। आपने उस दिन हाथ देख कर जो बातें बतायीं, वो बहुत हद तक सच्ची थीं और ऐसा लगता है कि मुस्तक़बिल[1] के बारे में आपने जो

---

१. मुस्तक़बिल = भविष्य

पेशीनगोई की, वह भी सच्ची निकलेगी। (जरा सा झुक कर धीमे स्वर में) आपको शायद मालूम नहीं, मैं डायरेक्टर कादिर की अगली फिल्म में बड़ा अहम रोल करने जा रहा हूँ, अव्वल तो हीरो का नहीं तो साइड हीरो का।

प्रकाश जी : (तत्काल मिलाने के लिए हाथ बढ़ाते हुए) तो मेरी बधाई लीजिए।

शहबाज़ : (हाथ मिलाते हुए) अभी पक्का तो नहीं, लेकिन पूरी उम्मीद है। फिल्म में तो आप जानते हैं जब तक पर्दे पर न आयें, सब कुछ ग़ैरयक़ीनी है।

प्रकाश जी : मैंने कहा न था कि आपका सितारा चमकने वाला है। एक शुक्र की आँख टेढ़ी थी सो उसे यह मरकत राम कर लेगा।

[अन्दर से तसमीन खातून और उनके भाई के मित्र या, जो भी कुछ वे हों, आते हैं।]

रफ़ीक : अच्छा तो शहबाज़ भाई चल दिये। सात-आठ दिन में फिर मिलेंगे।

शहबाज़ : मुझ से कहने की जरूरत नहीं, जो भी हो सका मैं जरूर करूँगा। ज्योंही मैं वहाँ जमा, तसमीन को रशीद भाई और कादिर साहब ने मिलाने की कोशिश करूँगा।

[तसमीन खातून बड़ी मीठी, प्यारी, तिरछी नज़र शहबाज़ और फिर कवि प्रकाश पर डालती हैं, फिर बड़ा मीठा सा 'आदाब अर्ज़' करती हैं और बुरके का नक़ाब नीचे करके सीढ़ियाँ उतरती हैं।]

रफ़ीक़ : (सीढ़ियां उतरते हुए) अच्छा तो शहबाज़ भाई आदाब अर्ज़।

शहबाज : आदाब अर्ज ! आदाब अर्ज (फिर प्रकाश जी से) तो चलिए प्रकाश भाई अन्दर बैठें।

प्रकाश जी : नहीं शहबाज़ भाई, अब तो चलेंगे। इनसे आपका परिचय करा दूँ।

(सतीश और शहबाज़ हाथ मिलाने को बढ़ाते हैं)

— : ये मेरे मित्र सतीश हैं, वड़े अच्छे कवि हैं। गले में रस है और कलम में जादू, रह गये तो चमक उठेंगे, अभी तो नयी उमर के घोड़े की तरह बिदकते हैं।

[शहबाज़ और प्रकाश खोखला सा ठहाका लगते हैं। सतीश हँसता नहीं, केवल शहबाज़ भाई का हाथ जोर से एक बार हिला कर छोड़ देता है।]

सतीश : फ़िल्म में सफल होने के लिए तो शंकर की तरह विष पीने की प्रतिभा होनी चाहिए। हम में तो इतनी प्रतिभा है नहीं।

[सीढ़ियों से रशीद भाई हाथ में दो एक बंडल उठाये हांफते हांफते चले आते हैं।]

शहबाज : (सतीश का हाथ छोड़कर रशीद भाई की ओर बढ़ते हुए) अरे रशीद भाई, यहाँ कैसे इस वक्त! और यह हाथ में क्या उठाये ला रहे हैं?

(आगे बढ़कर उनके हाथ से बंडल ले लेता है)

रशीद भाई : अरे भाई, हम तो आ गये। इतनी परेशानी थी वहाँ। कादिर साहब तो बहुत अच्छे हैं, पर बेगम कादिर…

(प्रकाश जी की ओर देख कर चुप हो जाते हैं)

शहबाज : (खोखली कृत्रिम हँसी के साथ) बड़ा अच्छा किया... बड़ा अच्छा किया...आपका घर है। यही ख़याल है कि आपको तकलीफ़ न हो। एक ही कमरा है। हँ...हँ...हँ। (गठड़ियां अन्दर कमरे की ओर ले जाते हुए प्रकाश जी से) प्रकाश भाई माफ़ कीजिएगा। रशीद भाई आ गये हैं। (रशीद भाई से) ये हैं कवि प्रकाश जी बम्बे फिल्मज़ की हिट पिक्चर 'पनिहारी' के गाने इन्हीं के लिखे हुए हैं। बड़े अच्छे ज्योतिषी भी हैं और ये हैं हमारे रशीद भाई—डायरेक्टर कादिर के साथ काम कर रहे हैं।

प्रकाश जी : (रशीद भाई से) शहबाज़ से आपकी बड़ी तारीफ़ सुनी है। आज दर्शन भी हो गये।

[बढ़कर हाथ मिलाते हैं और फिर हाथ लेकर एक नज़र डालते हैं। शहबाज़ गठड़ियाँ लिए बढ़ जाता है।]

— : आपके हाथ के माँउट तो रशीद भाई खूब उभरे हैं। यह सेटर्न तो बताता है कि आप, भगवान ने चाहा, तो किसी दिन प्रोड्यूसर होंगे। दो एक स्टूडियो आपके हों तो भी कोई हैरानी नहीं।

रशीद भाई : सच !

प्रकाश जी : (हाथ को और भी ध्यान से देखते हुए) मेरी बात आज तक तो ग़लत नहीं निकली। और फिर यह आपकी लक्क (luok) की लाइन यहाँ से कितनी गहरी है ! आपका सितारा ज़ोरों पर है !

[बेगम रशीद आती हैं। पीछे पीछे कुली सामान लाता है ।]

रशीद भाई : आपके मुंह में घी-शक्कर (जोर से हाथ मिलाते हुए) अच्छा अब तो इजाज़त दीजिए। आप मुझे कल वल जरूर मिलिए। मैं दस बजे से पाँच बजे तक कैडल्ल कोर्ट कैडल रोड के तीसरे माले पर कादिर साहब ही के साथ होता हूँ—अभी उनकी नयी पिक्चर 'रंग महल' का पेपर-वर्क (Paper-work) हो रहा है। वहीं आइएगा। जरूर! एक-आध गीत कोई नया लिखा हो, तो लेते आइएगा।

प्रकाश जी : ज़रूर हाज़िर हूँगा।

(शहबाज़ सामान छोड़कर आता है।)

रशीद भाई : लो भाई तुम्हारी भाभी तो आगयीं। इन्हें ज़रा अपना फ़्लैट दिखाओ। (बेगम से) यह शहबाज़ है बेगम!

शहबाज़ : आदाब अर्ज़ भाभी जान।

बेगम रशीद : आदाब अर्ज़।

प्रकाश जी : अच्छा शहबाज साहब हम तो चलते हैं। आदाब अर्ज।

शहबाज : आदाब अर्ज, प्रकाश भाई; माफ़ कीजिएगा। जल्दी ही मिलेंगे।

प्रकाश जी : (सिढ़ियों की ओर बढ़ते हुए) आदाब अर्ज़ रशीद भाई।

रशीद भाई : आदाब आदाब !

(दोनों कवि सीढ़ियां उतर जाते हैं)

शहबाज़ : (कुली से सामान उतारवाते हुए) आप चलिए अन्दर भाभीजान। मैं अभी आकर सब कुछ ठीक करता हूँ।

(बेगम रशीद अन्दर चली जाती हैं।)

शहबाज़ : मैं तो आपके साथ रशीद भाई इन सीढ़ियों पर सोकर भी खुश हूँगा। आपकी और भाभी जान की तकलीफ़ का ख़याल है। बड़ा छोटा .फ्लैट है मेरा।

रशीद भाई : (ट्रंक उठाकर अन्दर जाते हुए) अरे भाई कोई बात नहीं ! उस हर घड़ी की दिमाग़ी कोफ़्त से तो नजात मिलेगी। (कुली से) तू यहाँ खड़ा क्या मुंह तक रहा है। जा जल्दी से सारा सामान लेता आ।

शहबाज़ : (अन्दर जाते हुए) मेरे यहाँ तो कोई नौकर भी नहीं, रशीद भाई।

रशीद भाई : (उसके पीछे जाते हुए) अपनी नौकरानी आनी को हम साथ लेते आये हैं। नौकर कादिर साहब को मिल गया है।

[शहबाज के पीछे पीछे अन्दर जाते हैं। आनी दो गठड़ियाँ उठाये सीढ़ियों पर नमूदार होती है जब पर्दा गिरता है।]

[पर्दा कुछ क्षण बाद फिर उठता है रात का वक्त है। सीढ़ी में छत के ऊपर बिजली का बल्ब रोशन है। उसके गिर्द लोहे के तारों की जाली है ताकि कोई बल्ब निकाल न ले। पर्दा उठते समय शहबाज़ अपनी .फ्लैट के बाहर ज़मीन पर बिस्तर बिछाता दिखायी देता है। .फ्लैट का दरवाज़ा ज़रा खुला है। बिस्तर बिछा कर वह दरवाज़े पर 'टिक टिक' करता है। रशीद भाई झांकते हैं।

शहबाज : ज़रा वह तकिया मेरा दे दीजिएगा। ट्रंक पर पड़ा है।

[रशीद भाई तकिया लाकर देते हैं। शहबाज़ उसे बिस्तर पर फेंकता है।]

रशीद भाई : (दरवाज़े से गर्दन निकाल कर) शह्बाज भई, हमारी वजह से तुम्हें बड़ी तकलीफ़ हो रही है।

शहबाज़ : (बेपरवाही से बिस्तर पर लेटते हुए) अरे नहीं रशीद भाई, यहाँ तो उमर ही ज़मीन पर सोते गुज़री है। आपको इस कमरे में कोई दिक़्कत न हो, इसी बात की मुझे फ़िक्र है। आप मेरी चिन्ता न कीजिए। दिन के भर थके हैं, आराम कीजिए।

रशीद भाई : अच्छा भाई गुडनाइट।

शहबाज़ : गुडनाइट !

[रशीद भाई सिर अन्दर कर लेते हैं, ऊपर से नौकर छोकरा बगल में अपना बिस्तर लिये गाना गाता उतरता है :

छबीली री, मोसे आँखों को चुराना नहीं अच्छा
चुराना
छिपाना
लजाना
नहीं अच्छा

कि उसकी दृष्टि शह्बाज़ पर पड़ती है। कदम उसके वहीं रुक जाते हैं और गीत उसके ओंठों पर जम जाता है।

नौकर छोकरा : बाबू जी आप यहाँ......

शहबाज़ : (बेपरवाही से) अरे भाई एक फ़िल्म में हमें नौकर का पार्ट करना है। कुछ दिन तुम्हारे पास सीढ़ी पर

सोकर देखें कि तुम लोगों पर कैसी गुज़रती है। जभी तो अच्छा पार्ट कर पायेंगे।

[खिसियानी सी हँसी हँसकर चादर तान लेता है। चकित सा नौकर छोकरा उसके निकट ही अपना बिस्तर बिछा रहा होता है जब पर्दा गिर जाता है।]
